॥ चाणक्यनीतिदर्पण ॥

भाषा टीका व दोहा सहित

जिसमें

नीतिके अत्युत्तम दृष्टान्तयुक्त
सामयिक श्लोक वर्णित हैं ।

जिसको

उन्नाव प्रदेशान्तर्गत बरौली ग्राम निवासी
पं० महाराजदीन दीक्षित ने
सरल भाषा व दोहोंमें अंकित किये

जिसको

लाला श्यामलाल अग्रवाल ने
अपने श्यामकाशी प्रेस मथुरामें
छापकर प्रकाशित किया

॥ श्री ॥

॥ चाणक्यनीतिदर्पण ॥

❀ भाषा टीका व दोहा सहित ❀

जिसमें

नीतिके अत्युत्तम दृष्टान्तयुक्त
सामयिक श्लोक वर्णित हैं।

जिसको

उन्नाव प्रदेशान्तर्गत बरौडा ग्राम निवासी
पं० महाराजदीन दीक्षित ने
सरल भाषा व दोहोंसे अलंकृत किया।

जिसको

लाला श्यामलाल अग्रवालनेअपने
श्यामकाशी प्रेस मथुरामें छापकर
प्रकाशित किया
सन् १९१४ ई०

श्रीगणेशायनमः

चाणक्यनीतिदर्पणः ।

प्रणम्यशिरसाविष्णुं त्रैलोक्याधिपतिम्प्रभुम् ।
नानाशास्त्रोद्धृतंवक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम् ॥

दो०–सुमति बढ़ावनसर्वजन, पावननीतिप्रकाश ।
भाषालघुचाणक्यभलें, भनतभावनादास ॥ १ ॥

तीनों लोकों के पालन करने वाले सर्वशक्तिमान विष्णु को शिरसे प्रणाम करके अनेक शास्त्रों में से निकालकर राजनीतिसमुच्चयनामक ग्रन्थ को कहूंगा ॥ १ ॥

अधीत्येदंयथाशास्त्रं नरोजानातिसत्तमः ॥
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याकार्यंशुभाशुभम् ॥ २ ॥

दोहा–तत्वसहित पढ़िशास्त्रयह, नरजानतसबबात ।
काजअकाजशुभाशुभहि, धरमरीतिविख्यात ॥ २ ॥

जो इसको विधिवत् पढ़कर धर्मशास्त्र में प्रसिद्ध शुभकार्य और अशुभ कार्य्य को जानता है वह अति उत्तम गिना जाता है ॥ २ ॥

तदहंसंप्रवक्ष्यामि लोकानांहितकाम्यया ।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥ ३ ॥

दोहा—मैं सोइअबवरनन करूं, अतहितकारक अज्ञ ।
जाकेजानत होतजन, सबही विध सर्वज्ञ ॥ ३ ॥

मैं लोगों के हितकी वांछासे उनको कहूंगा जिसके ज्ञान मात्र से सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है ॥ ३ ॥

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेनच
दुःखितैःसंप्रयोगेण पण्डितोप्यवसीदति ॥ ४ ॥

दोहा—उपदेसतशिषमूढकहं, व्यभिचारिनिढिंगवास ।
अरिसों करत विसासटर, विदुषहु लहत विलाप ॥ ४ ॥

निर्बुद्धि शिष्यको पढाने से दुष्ट स्त्री के पालन से और दुखियोंके साथ व्यवहार करने से पण्डित भीदुःख पाताहै ॥ ४ ॥

दुष्टाभार्याशठंमित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ।
ससर्पेचगृहेवासो मृत्युरेव न संशयः ॥ ५ ॥

दोहा—[illegible] मित्रशठ, उत्तरदायकभृत्य ।
[illegible] संचार में, सब विधि अरियौ सत्य ॥ ५ ॥

[illegible] दुष्ट स्त्री, शठ मित्र, उत्तर देने वाला दास और सांप वाले [illegible] में वास ये मृत्युस्वरूपही हैं इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥

आपदर्थेधनंरक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानंसततंरक्षेद्दारैरपिधनैरपि ॥ ६ ॥

दो० धनगहिराखहु विपतहित, धनते वनिताधीर ॥
तजिवनिताधन कूं तुरत, सबते रखहु शरीर ॥ ६ ॥

आपत्तिनिवारण करने के लिये धन को बचाना चाहिये धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिये सब कालमें स्त्री औरधनों से भी अपनी रक्षा करनी उचित है ॥ ६ ॥

आपदर्थंधनंरक्षेच्छ्रीमतश्चाकिमापदः ।
कदाचिच्चलितालक्ष्मी संचितोऽपिविनश्यति ॥ ७ ॥

विपत्तिनिवारण के लिये धनकी रक्षा करनी उचित है क्या श्रीमानों को भी आपत्ति आती है ? हां कदाचित् दैव-योग से लक्ष्मी चली जाती है उस समय संचित भी नष्टहो जाता है ॥ ७ ॥

यस्मिन्देशेनसन्मानो नवृत्तिर्नचबान्धवाः ।
नचविद्यागमोप्यस्ति वासस्तत्रनकारयेत् ॥ ८ ॥

दोहा–जहांनआदरजीविका, नहिंप्रियबन्धुनिवास
नहिंविद्याजिहिदेशमें, वसहुनदिनइकवास ॥ ८ ॥

जिस देश में न आदर न जीविका न बन्धु न विद्या का लाभ वहां वास नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥

धनिकः श्रोत्रियोराजा नदीवैद्यस्तुपञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥९॥

दो०—धनिकवेदवितभूपअरु, नदीवैद्यपुनिसोय ।
बसहुनांहिइकदिवसतहँ, जहँयहपंचनहोय ॥ ९ ॥

धनिक वेदका ज्ञाता ब्राह्मण राजा नदी और पांचवां वैद्य ये पांच जहां विद्यमान न हों तहां एक दिन भी वास नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥

लोकयात्राभयंलज्जा दाक्षिण्यन्त्यागशीलता ।
पञ्चयत्रनविद्यन्ते नकुर्यात्तत्रसंगतिम् ॥ १० ॥

दो०—दानदच्छतालाजभय, जीत्रालोगनजान ।
पंचनयहजहांपिपये, तहांनजसहुसुजान ॥ १० ॥

जीविका भय लज्जा कुशलता देने की प्रकृति जहां ये पांच नहीं वहां के लोगों के साथ संगति करनी न चाहिये ॥ १० ॥

जानीयात्प्रेषणेभृत्यान् बान्धवान्व्यसनागमे ।
मित्रंचापत्तिकालेतु भार्यां च विभवक्षये ॥११॥

दो०—काज चलाए पर स्वचर, बंधुनरनदुखहोय ।
मित्रपरखियतुविपतमें, विभवनासितियसोय ॥ ११ ॥

काम में लगाने पर सेवकों की, दुःख आने पर बान्धवों की,

विपत्तिकाल में मित्र की और विभव के नाश होने पर स्त्री की परीक्षा हो जाती है ॥ ११ ॥

आतुरेव्यसनेप्राप्ते दुर्भिक्षशत्रुसंकटे ।
राजद्वारेश्मशानेच यस्तिष्ठतिसबान्धवः ॥ १२ ॥

दो०—दुखआतुरदुर्भिक्षमें, अरिनवकलहअभंग ।
भूपतिभौनमसानमें, बंधुसोईरहैसंग ॥ १२ ॥

आतुर होने पर दुःख प्राप्त होने पर काल पडनेपर वैरियों से संकट आने पर राजा के समीप और श्मशान पर जो साथ रहता है वही बन्धु है ॥ १२ ॥

योध्रुवाणिपरित्यज्य अध्रुवंपरिसेवते ।
ध्रुवाणितस्यनश्यन्ति अध्रुवंनष्टमेवहि ॥ १३ ॥

दो०—ध्रुवकूंतजिअध्रुवगहै, चितमेंअतिसुखचाहि ।
ध्रुवतिनकेनासततुरत, अध्रुवनष्टहुआदि ॥ १३ ॥

जो निश्चत वस्तुओं को छोडकर अनिश्चित की सेवा करता है उसके निश्चित वस्तुओं का नाश हो जाता है अनिश्चित तो नष्टही हैं ॥ १३ ॥

वरयेत्कुलजांप्राज्ञो विरूपामपिकन्यकाम् ।
रूपशीलां न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले ॥ १४ ॥

दो०—कुलजातीयविरूपतोउ, चतुरवरेंकरिचाह ।

रूपवतीतोउनीचतजि, समकुलकरियविवाह ॥ १४ ॥

बुद्धिमान उत्तम कुलकी कन्या कुरूपा भी हो उसे वरें नीच कुलकी सुन्दरी हो तो भी उसको नहीं इस कारण कि विवाह तुल्य कुलमें विहित है ॥ १४ ॥

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखीनां शृंगिणांतथा ।
विस्वासोनैवकर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषुच ॥१५॥

दो०—सरिताशृंगीशस्त्रकर, अरुजितनेनखवंत ।
तियकोनृपकुलकोतथा, करहुविश्वासनमित ॥ १५ ॥

नदियों का शस्त्रधारियों का नखवाले और सींगवाले जन्तुओं का स्त्रियों में और राजकुल पर विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

विषादप्यमृतंग्राह्यममेध्यादपिकाञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमांविद्यां स्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि ॥१६॥

दो०—गहहुसुधाविषतेंकनक, मलतेगहुकरियत्न ।
नीचहुतेविद्याविमल, दुष्कुलतेंतियरत्न ॥ १६ ॥

विष में से भी अमृत को अशुद्ध पदार्थों में से भी सोने को नीच से भी उत्तम विद्या को और दुष्ट कुल से भी स्त्रीरत्न को लेना योग्य है ॥ १६ ॥

स्त्रीणांद्विगुणआहारो लज्जाचापिचतुर्गुणा ।

साहसंषड्गुणंचैव कामश्चाष्टगुणःस्मृतः ॥ १७ ॥

दो०-तिय अहारदोयदगुणा, लाजचहुरगुणजान ।

षटगुनतेहिव्यवसायतिय, कामअष्टगुणमान ॥ १७ ॥

पुरुष से स्त्रियों का आहार दूना लज्जा चौगुनी साहस छगुना और काम अठगुना अधिक होता है ॥ १७ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः

अनृतंसाहसंमाया मूर्खत्वमतिलोभता ।

अशौचत्वंनिर्दयत्वं स्त्रीणांदोषाः स्वभावजाः ॥ १ ॥

दो०-अनृतशीघ्रतामूढता, कपटअतिलोभताइ ।

निरदयताअशौचता, तियमेंसहजरहाइ ॥ १ ॥

असत्य, विना विचार किसी काम में झटपट लगजाना छल मूर्खता अति लोभी अपवित्रता और निर्दयता ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं ॥ १ ॥

भोज्यंभोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना ।

विभवोदानशक्तिश्च नाल्पस्यतपसः फलम् ॥ २ ॥

दो०-भोजन भोजनशक्तिरति, शक्तिसंगवरनारि ।

विभवदानशक्तिसह, बहुतपफलसुखकारि ॥ २ ॥

भोजन के योग्य पदार्थ और भोजन की शक्ति रति की शक्ति सुन्दर स्त्री ऐश्वर्य और दानशक्ति इनका होना थोडे तप का फल नहीं है ॥ २ ॥

यस्यपुत्रो वशीभूतो भार्य्या छन्दानुगामिनी ।
विभवे यश्च सन्तुष्टस्तस्य स्वर्ग इहैव हि ॥३॥

दो०—सुत आज्ञा कारी जिनहि, अनुगामिनि तियजान ।
विभव अलप सन्तोष तेहि, सुरपुर इहांपिछान ॥ ३ ॥

जिसका पुत्र वशमें रहता है और स्त्री इच्छा के अनुसार चलती है और जो विभव में सन्तोष रखता है उसको स्वर्ग यहीं है ॥

तेपुत्रा ये पितुर्भक्ताः सपिता यस्तु पोषकः ।
तन्मित्रंयत्र विश्वासः साभार्य्यायत्र निर्वृतिः ॥४॥

दो०—तेसुत जो पितु भक्ति रत, हित कारक पितु होय ।
जेहि विसास सोइमित्रवर, सुख दायक तियसोय ॥ ४॥

वेही पुत्र हैं जो पिता के भक्त हैं वही पिता है जो पालन करता है वही मित्र है जिसपर विश्वास है वही स्त्री है जिससे सुख प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

परोक्षे कार्य्य हन्तारं प्रत्यक्षे प्रिय वादिनम् ॥
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ ५॥

दो०—कारज हनतपरोक्षमें, प्रियवच मिलत विशेष।
तेहिंकूं सज्जन दूरितज, विष घट पयमुख पेश ॥५॥

आंख के ओट होने पर काम बिगाडे सन्मुख होने पर मीठी २ बातबनाकर कहे ऐसे मित्र को मुहडे पर दूध से और सब विषसे भरे घडे के समान छोड देना चाहिये ॥ ५ ॥

न विश्वसेत्कुमित्रेच मित्रेचापि न विश्वसेत् ।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

दो०—नहिंविश्वास कुमित्रकर, कीजिय मितहुकौ न ।
कबहि मितकुकोप करि, गोपहुसबदुखभौन ॥ ६ ॥

कुमित्र पर विश्वास तो किसी प्रकार से नहीं करना चाहिये और सुमित्रपर भी विश्वास न रक्खे इस कारण किकदाचित मित्र रुष्ट होकर सब गुप्त बातों को प्रसिद्ध करदे ॥ ६ ॥

मनसा चिन्ततं कार्य्यं वाचा नैव प्रकाशयेत् ।
मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्य्यं चापि नियोजयेत् ॥७॥

दो०—मनतें चिंतित काजजो, बने न तैं कहियेन ।
मंत्र गूढ राखिय कहिय, देखि काज सुख देन ॥ ७ ॥

मन से सोचे हुये कार्यका प्रकाश वचन से न करे किन्तु मन्त्रणा से उसकी रक्षा करे और गुप्तही उस कार्य्यको काम में भी लावै ॥ ७ ॥

कष्टञ्चखलु मूर्खत्वं कष्टञ्चखलु यौवनम् ।
कष्टात् कष्टतरञ्चैव परगेहे निवासनम् ॥ ८ ॥

मूर्खता दुःख देती है और युवापनभी दुःख देता है परन्तु दूसरे के गृह का वास तो बहुत ही दुःख दायक होताहै ॥ ८ ॥

शैलेशैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥ ९ ॥

दो०-गिरिप्रति नाहि मानकगानिय, मोति न प्रतिगजमाहिं ।
सबहि ठौर नाहिं साधुजन, वनवनचन्दननांहि ॥ ९ ॥

सब पर्वतों पर माणिक्य नहीं होता और मोती सब हाथियों में नहीं मिलता साधु लोग सब स्थान में नहीं मिलते सब बन में चन्दन नहीं होता ॥ ९ ॥

पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्याः सततंबुधैः ।
नीतिज्ञाः शीलसम्पन्नःभवन्तिकुलपूजिताः॥ १० ॥

दो०-चातुरता सुतकूं सुपितु, सिखवतवारहिवार ।
नीति वंत बुधि वंत कै, पूजत सब संसार ॥ १० ॥

बुद्धिमान् लोग लडकों को नाना भांति की सुशीलता में लगावें इस कारण कि नीति जानने वाले यदि शीलवान् होतो कुलमें पूजित होते हैं ॥ १० ॥

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
नशोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ ११ ॥

दो०-मातपित अरि तुल्य ते, सुतनपढावतनीच ।
सभा मध्य शोभतनसो, जिमबकहंसनबीच ॥ ११ ॥

वह माता शत्रु और पिता वैरी है जिसने अपने बालक को न पढाया इस कारण कि सभाके बीच वह नहीं शोभता जैसे हंसों के बीच बगुला ॥ ११ ॥

लालनाद्बहवोदोषास्ताडनाद्बहवोगुणाः ।
तस्मात्पुत्रंचशिष्यंचताडयेन्नतुलालयेत् ॥ १२ ॥

दोहा-सुतलालन में दोषवहु. गुनबहु ताडन मांहि ।
तेहिते सुतअरुशिष्यकूं. ताडिय लालियनाहि ॥ १२ ॥

दुलारने से बहुत दोष होते हैं और दण्ड देने से बहुतगुण इस हेतु पुत्र और शिष्य को दण्ड देना उचितहै ॥ १२ ॥

श्लोकेन वा तदर्द्धेनतदर्द्धार्द्धाक्षरेणवा
अवंध्यंदिवसंकुर्याद्दानाध्ययनकर्मभिः ॥

दोहा-श्लोक श्लोकहुअरध. पादहुअच्छरकोय ।
वृथागमावतदिवसना. शुभचाहत निजसोय ॥ १३ ॥

श्लोक वा श्लोक के आधे को अथवा आधे में से आधे को प्रति दिन पढ़ना उचित है इस कारण कि दान अध्ययनआदि कर्म से दिनको सार्थक करना चाहिये ॥ १३ ॥

कांतावियोगःस्वजनापमानो
रणस्यशेषः कुनृपस्यसेवा ।
दरिद्रभावोविषमासभाच
विनाग्निमेतेप्रदहंतिकायम् ॥ १४ ॥

स्त्री, का बिरह अपने जनों से अनादर, युद्ध करके बचा शत्रु कुत्सित राजा की सेवा, दरिद्रता और अविवेकियों की सभा ये बिना आगही शरीर को जलाते हैं ॥ १४ ॥

नदीतीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी ।
मन्त्रिहीनाश्च राजानः शीघ्रं नश्यन्त्यसंशयम् ॥ १५ ॥

दोहा–तरुवर सरितातीरपर, निपट निरंकुश नार ।
नरपति हीन सलाह नित, बिनसत लगै न बार ॥ १५ ॥

नदीके तीरके वृक्ष दूसरे के गृहमें जाने वाली स्त्री मंत्री रहित राजा निश्चय है कि शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्यं बलन्तथा ।
बलं वित्तञ्च वैश्यानां शूद्राणां परिचर्यिका ॥ १६ ॥

ब्राह्मणों का बल प्रगट विद्या है वैसेही राजा का बल सेना वैश्यों का बल धन और शूद्रों का बल सेवा है ॥ १६ ॥

निर्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्नं नृपं त्यजेत् ।
खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चाभ्यागतो गृहम् ॥ १७ ॥

वेश्या निर्धन पुरुष को प्रजा शक्तिहीन राजा को पक्षी फल रहित वृक्षको और अभ्यागत भोजन करके घर छोड़ देते हैं ॥ १७ ॥

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्यजन्ति यजमानकम् ।
प्राप्तविद्या गुरुं शिष्या दग्धारण्यं मृगास्तथा ॥ १८ ॥

ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमान को त्यागदेते हैं शिष्य विद्या प्राप्त हो जाने पर गुरु को वैसे ही जले हुये वन को मृग छोड देते हैं ॥ १८ ॥

दुराचारीदुराद्दृष्टिर्दुरावासीचदुर्जनः ।
यन्मैत्रीक्रियतेपुम्भिर्नरः शीघ्रंविनश्यति ॥ १९ ॥

जिसका आचरण बुरा है जिसकी दृष्टि पाप में रहती है बुरे स्थानमें बसनेवाला और दुर्जन इन पुरुषों की मैत्री जिसके साथ की जाती है वह नर शीघ्रही नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥

समाने शोभते प्रीतिराज्ञिसेवाचशोभते ।
वाणिज्यंव्यवहारेषु स्त्रीदिव्याशोभतेगृहे ॥ २० ॥

समान जन में प्रीति शोभती है और सेवा राजा की शोभती है व्यवहारों में बनियाई और घर में दिव्य स्त्री शोभती है ॥ २० ॥

इतिद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



कस्यदोषःकुलेनास्ति व्याधिनाकोनपीडितः ।
व्यसनंकेनसम्प्राप्तं कस्यसौख्यंनिरन्तरम् ॥ १ ॥

किसके कुल में दोष नहीं है व्याधि ने किसे पीडित न किया किसको दुःख न मिला किसको सदा सुखही रहा ॥ १ ॥

आचारःकुलमाख्याति देशमाख्यातिभाषणम् ।
सम्भ्रमःस्नेहमाख्यातिवपुराख्यातिभोजनम् ॥ २ ॥

आचार कुलको बतलाता है बोली देशको जनाती है आदर प्रीति को प्रकाश करताहै भोजन शरीरको जनाता है ।२।

सुकुलेयोजयेत्कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत् ।
व्यसनेयोजयेच्छत्रुम्मित्रंधर्मेणयोजयेत् ॥ ३ ॥

कन्या को श्रेष्ठ कुलवाले वर को देना चाहिये पुत्र को विद्या में लगाना चाहिये शत्रुको दुःख पहुंचाना उचित है और मित्र को धर्मका उपदेश करना चाहिये ॥ ३ ॥

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरंसर्पो न दुर्जनः ।
सर्पोदंशतिकालेतु दुर्जनस्तुपदेपदे ॥ ४ ॥

दुर्जन और सर्प इन से सांप अच्छा दुर्जन नहीं इस कारण कि सांप काल आनेपर काटता है खल तो पद पद में ॥ ४ ॥

एतदर्थंकुलीनानां नृपाःकुर्वन्तिसंग्रहम् ।
आदिमध्यावसानेषु न त्यजन्ति च ते नृपम्॥५॥

राजा लोग कुलीनों का संग्रह इस निमित्त करते हैं कि वे आदि अर्थात् उन्नति मध्य अर्थात् साधारण और अन्त अर्थात् विपत्ति में राजा को नहीं छोड़ते ॥५॥

प्रलयेभिन्नमर्यादा भवन्तिकिलसागराः ।
सागराभेदमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधवः ॥६॥

समुद्र प्रलय के समय में अपनी मर्यादा को छोड़देतेहैं और सागर भेद की इच्छा भी रखतेहैं परन्तु साधु लोग प्रलय होने पर भी अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ते ॥ ६ ॥

मूर्खस्तुपरिहर्त्तव्यः प्रत्यक्षोद्विपदः पशुः ।
भिद्यतेवाक्यशल्येन अदृशंकंटकंयथा ॥ ७ ॥

मूर्ख को दूर करना उचित है इस लिये कि देखने मेंवह मनुष्यहै परंतु यथार्थ में पशु है और वाक्य रूप कांटेसे भेदताहै जैसे अंधे का कांटा ॥ ७ ॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धाइवकिंशुकाः ॥८॥

दो०-संयुत जोबन रूप तें, कहियत बड़े कुलीन ।
विद्याबिन शोभें नहीं, पुहुपगंध तें हीन ॥८॥

सुंदरता तरुणता और बड़े कुल में जन्म इनके रहते भी विद्याहीन बिना गंध पलाश के फूलके समान नहीं शोभते॥८॥

कोकिलानांस्वरोरूपं नारीरूपंपतिव्रतम् ॥
विद्यारूपंकुरूपाणां क्षमारूपंतपस्विनाम् ॥ ९ ॥

कोकिलों की शोभा स्वरहै स्त्रियों की शोभा पातिव्रत्य है कुरूपों की शोभा विद्या है तपस्वियों की शोभा क्षमा है ॥९॥

त्यजदेकंकुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामंजनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १० ॥

दो०—कुलहित त्यागिय एककूं, गहहु छांड़ि कुलगाम ।
जनपदहित ग्रामहि तजहु, तनहित अवनि तमाम ॥ १० ॥

कुलके निमित्त एक को छोड़ देना चाहिये ग्राम के हेतु कुलको त्याग करना उचित है देशके अर्थ ग्राम को और अपने अर्थ पृथिवी को अर्थात् सबका त्यागही उचित है ॥ १० ॥

उद्योगेनास्तिदारिद्र्यं जपतोनास्तिपातकम् ।
मौनेन कलहोनास्ति नास्तिजागरितोभयम् ॥ ११ ॥

उपाय करने पर दरिद्रता नहीं रहती जपने वाले को पाप नहीं रहता मौन होने से कलह नहीं होता जागने वाले के निकट भय नहीं आता ॥ ११ ॥

अतिरूपेण वै सीता अति गर्वेण रावणः ।
अतिदानाद्बलिर्बद्धो ह्यतिसर्वत्रवर्जयेत् ॥ १२ ॥

अति सुन्दरता के कारण सीता हरी गई अति गर्वसे रावण मारा गया बहुत दान देकर बलि को बँधना पड़ा इस हेतु अति को सब स्थल में छोड़ देना चाहिये ॥ १२ ॥

कोहिभारः समर्थानां किंदूरं व्यवसायिनाम् ।
कोविदेशःसविद्यानांकः परःप्रियवादिनाम् ॥ १३ ॥

समर्थ को कौन वस्तु भारी है काममें तत्पर रहने वाले को क्या दूर है सुन्दर विद्यावालों को कौन विदेश है प्रिय वादियों को पराया कौन है ॥ १३ ॥

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वासितन्तद्वनंसर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ १४ ॥

एक भी अच्छे वृक्षसे जिसमें सुन्दर फूल और गंध है उसी से सब वन सुवासित हो जाता है जैसे सुपुत्र से कुल ॥ १४ ॥

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यतेतद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥

आग से जलते हुये एक ही सूखे वृक्ष से वह सब वन जल जाता है जैसे कुपुत्र से कुल ॥ १५ ॥

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना ।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी ॥ १६ ॥

विद्यायुक्त भला एक भी सुपुत्र हो उससे सब कुल आनन्दित हो जाता है जैसे चन्द्रमा से रात्रि ॥ १६ ॥

किं जातैर्बहुभिःपुत्रैःशोकसन्तापकारकैः ।
वरमेकःकुलालम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम् ॥ १७ ॥

शोक सन्ताप उत्पन्न करने वाले बहुत पुत्रों से क्या

कुल को सहारा देनेवाला एकही पुत्र श्रेष्ठ है जिसमें कुल विश्राम पाता है ॥ १७ ॥

लालयेत्पंचवर्षाणि दशवर्षाणिताडयेत् ।
प्राप्तेतु षोडशेवर्षे पुत्रे मित्रत्वमाचरेत् ॥ १८ ॥

पुत्र को पांच वर्ष तक दुलारे उपरान्त दश वर्ष पर्य्यन्त ताड़ना करे सोलहवें वर्ष के प्राप्त होने पर पुत्र में मित्र समान आचरण करै ॥ १८ ॥

उपसर्गेऽन्यचक्रेच दुर्भिक्षेचभयावहे ।
असाधुजनसंपर्के यः पलायतिसजीवति ॥१७॥

उपद्रव उठने पर शत्रु के आक्रमण करने पर भयानक अकाल पडने पर और खलजन के संग होने पर जो भागता है वह जीवता रहता है ॥ १ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्यैकोऽपिनविद्यते ।
जन्मजन्मानिमर्त्येषु मरणन्तस्यकेवलम् ॥ २० ॥

दो०-धरमादिक चहुं वरगमें, जो हिय एक न धार ।
जगतजनमि तेहिमरनकै, मरिवैहोतअवार ॥ २० ॥

धर्म अर्थ काम मोक्ष इन में से जिसको कोई न भया उस को मनुष्यो में जन्म होने का फल केवल मरण ही है ॥

मूर्खायत्रनपूज्यंते धान्यंयत्रसुसञ्चितम् ।

दाम्पत्येकलहोनास्ति तत्र श्रीःस्वयमागता ॥२१॥

जहां मूर्ख नहीं पूजेजाते जहां अन्न सञ्चित रहता है और जहां स्त्री पुरुष में कलह नहीं होती वहां आप ही लक्ष्मी विराजमान रहती है ॥ २१ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



आयुः कर्मंचवित्तञ्च विद्यानिधन मे वच ।
पञ्चैतानिहिसृज्यन्ते गर्भस्थस्यैवदेहिनः ॥ १ ॥

यह निश्चय है कि आयु कर्म धन विद्या और मरण ये पाचों जब जीव गर्भही में रहता है लिखदिये जाते हैं ॥ १ ॥

साधुभ्यस्तेनिवर्तन्ते पुत्रमित्राणिवान्धवाः ।
येचतैः सहगंतारस्तद्धर्मात्सुकृतंकुलम् ॥ २ ॥

पुत्र मित्र बन्धु ये साधु जनोंसे निवृत्त होजाते हैं और जो उनका संग करते हैं उनके पुण्य से उनका कुल सुकृती हो जाता है ॥ २ ॥

दर्शनध्यानसंस्पर्शैर्मत्सीकूर्मीचपक्षिणी ।
शिशुम्पालयतेनित्यं तथासज्जनसंगतिः ॥ ३ ॥

मछली कछुई और पक्षी ये दर्शन ध्यान और स्पर्शसे बच्चोंको सर्वदा पालती हैं वैसेही सज्जनोंकी संगति है ॥ ३ ॥

यावत्स्वस्थोह्ययंदेहो यावन्मृत्युश्चदूरतः ।
तावदात्महितंकुर्यात् प्राणान्तेकिंकरिष्यति ॥४॥

जबलों देह निरोग है और जबलग मृत्यु दूर है तत्पर्य्यंत अपनाहित पुण्यादि करना उचित है प्राणके अन्त होजानेपर कोई क्या करेगा ॥ ४ ॥

कामधेनुगुणाविद्या ह्यकालेफलदायिनी ।
प्रवासेमातृसदृशी विद्यागुप्तंधनंस्मृतम् ॥ ५ ॥

विद्यामें कामधेनु के समान गुणहैं इस कारणकि अकाल में भी फलदेती है विदेश में माता के समानहै विद्याको गुप्तधन कहते हैं ॥ ५ ॥

एकोऽपिगुणवान्पुत्रो निर्गुणैश्चशतैर्वरः ।
एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति नचताराः सहस्रशः॥ ६ ॥

एक भी गुणी पुत्र श्रेष्ठ है और सैकड़ों गुणरहितों से क्या । एकही चन्द्र अन्धकार नष्ट कर देता है सहस्र तारे नहीं ॥ ६ ॥

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतोवरः ।
मृतस्तु चाल्पदुःखाय यावज्जीवंजडोदहेत् ॥७॥

मूर्ख पुत्र चिरंजीविभी हो उससे उत्पन्न होतही जो मरगया वह श्रेष्ठ है इस कारण कि मरा थोडेही दुःखका कारण होता

है जड़ जबलों जाता है डाहता है ॥ ७ ॥

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या ।
पुत्रश्चमूर्खो विधवा च कन्या
विनाग्निनाषट्प्रदहन्तिकायम् ॥ ८ ॥

कुग्राम में वास नीचे कुलकी सेवा कुभोजन कलही स्त्री मूर्ख पुत्र विधवा कन्या छः बिना आगही शरीर को जला देते हैं ॥ ८ ॥

किंतयाक्रियतेधेन्वा या न दोग्ध्री न गर्भिणी ।
कोऽर्थःपुत्रेण जातेन योनविद्वान्नभक्तिमान् ॥९॥

उस गाय से क्या लाभ जो न दूध देवे न गाभिन होवे और ऐसे पुत्र हुए से क्या लाभ जो न विद्वान् भया न भक्तिमान ॥ ९ ॥

संसारतापदग्धानां त्रयोविश्रान्तिहेतवः ।
अपत्यंचकलत्रंच सतांसंगतिरेवचः ॥ १० ॥

संसार के तापसे जलते हुये पुरुषों के विश्राम के हेतु तीन हैं लडका स्त्री और सज्जनों की संगति ॥ १० ॥

सकृज्जल्पन्तिराजानःसकृज्जल्पन्तिपण्डिताः ॥
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ११

राजा लोग एकही बार आज्ञा देते हैं पण्डित लोग एकही बार बोलतेहैं कन्या एकही बार दानहोती है ये तीनों बात एक ही बार होती हैं ॥ १२ ॥

एकाकिनातपोद्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः।
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पंचभिर्बहुभीरणम् ॥ १२ ॥

अकेले में तप दोसे पढना तीनसे गाना चार से पंथ में चलना पांच से खेती और बहुतों से युद्ध भली भांति से बनते हैं ॥ १२ ॥

साभार्यायाशुचिर्दक्षा साभार्यायापतिव्रता।
साभार्यायापतिप्रीता साभार्यासत्यवादिनी ॥ १३ ॥

वही भार्या है जो पवित्र और चतुर है वही भार्य्या है जो पतिव्रता है वही भार्या है जिसपर पतिकी प्रीतिहै वही भार्या है जो सत्य बोलतीहै अर्थात् दान मान पोषण और पालन के योग्य है ॥ १३ ॥

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिश शून्यास्त्वबांधवाः।
मूर्खस्य हृदयं शून्य सर्वशून्यादरिद्रता ॥ १४ ॥

निपुत्री का घर सूना है बन्धु रहित दिशा शून्य है मूर्खका हृदय शून्य है और सब शून्य दरिद्रता है ॥ १४

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम्।

दरिद्रस्यविषंगोष्ठीवृद्धस्यतरुणीविषम् ॥ १६ ॥

बिना अभ्यास से शास्त्र विष हो जाता है बिना पचे भोजन विषहो जाता है दरिद्र को गोष्ठी विष और वृद्धको युवती विष जान पडती है ॥ १६ ॥

त्यजेद्धर्मन्दयाहीनं विद्याहीनंगुरुन्त्यजेत् ।
त्यजेत्क्रोधमुखीम्भार्यान्निस्नेहान्बान्धवांस्त्यजेत् ।

दया रहित धर्मको छोड देना चाहिये विद्याहीन गुरुका त्याग उचित है जिसके मुंह से क्रोध प्रकट होता हो ऐसी भार्य्या को अलग करना चाहिये और विना प्रीति बांधवों का त्याग विहित है ॥ १६ ॥

अध्वाजरामनुष्याणां वाजिनाबन्धनंजरा ।
अमैथुनंजरास्त्रीणां वस्त्राणामातपोजरा ॥१७॥

मनुष्यों को पथ बुढापा है घोडों को बांध रखना वृद्धता है स्त्रियों को अमैथुन बुढापा है वस्त्रों को घाम वृद्धता है ॥१७॥

कःकालःकानिमित्राणि कोदेशःकौव्ययागमौ ।
कस्याहंकाचमेशक्तिरितिचिन्त्यंमुहुर्मुहु

दोहा-काल मित्र अरु देश कहा, कहा लाभ कहा हान ।
कामें कैसी शक्ति इम, बार बार हिय ठान ॥१८॥

किस कालमें क्या करना चाहिये मित्र कौनहैयह सोचना

चाहिये इसी भांति देश कौन है इस पर ध्यान देना चाहिये लाभ व्यय क्याहै यह भी जानना चाहिये इसी भांतिकिसका मैं हूं यह देखना चाहिये इसी प्रकार से तुझ में क्या शक्ति है यहबार बार विचारना योग्य है ॥ ११ ॥

अग्निर्देवोद्विजातीनां मनीनां हृदिदैवतम् ॥१९॥
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां सर्वत्रसमदर्शिनाम् ॥ १९ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन की देवता अग्नि है मुनियों के हृदय में देवता रहते हैं अल्प बुद्धियों को मूर्ति में औरसमदर्शियों को सब अस्थान में देवता है ॥ १९ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पतिरेवगुरुःस्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतोगुरुः ।
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणोगुरुः ॥१॥

दोहा—अग्निगुरु कुलद्विजनके, विप्रवरणगुरुहोय ।
पतिगुरुजानो तियनको; अतिथि सर्वगुरु सोय ॥ १ ॥

स्त्रियों का गुरु पतिही है अभ्यागत सबका गुरुहै ब्राह्मण क्षत्री वैश्य का गुरु अग्नि है और चारों वर्णों का गुरु ब्राह्मणहै १॥

यथाचतुर्भिःकनकंपरीक्ष्यते

निर्घर्षणच्छेदनतापताडनैः ॥
तथाचतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
त्यागेनशीलेनगुणेनकर्मणा ॥ २ ॥

दो०-घसत छेद तप दंडतैं. पारख कनक कहात ।
श्रुत कुल शील सुकर्मतैं, तैसैंइ नर परखात ॥ २ ॥

घिसना काटना तपाना पीटना इन चार प्रकारोंसे जैसे सोने की परीक्षा की जाती है वैसेही दान शील गुणऔर आचार इन चारों प्रकार से पुरुष की भी परीक्षा की जातीहै ॥२॥

तावद्भयेषुभेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतंतुभयंवीक्ष्य प्रहर्तव्यमशंकया ॥ ३ ॥

तब तकही भयों से डरना चाहिये जबतक भयनहींआया और आये हुये भयको देखकर प्रहार करना उचितहै ॥ ३॥

एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः ।
नभवन्तिसमाः शीले यथाबदरिकण्टकाः ॥ ४ ॥

एकही गर्भ से उत्पन्न और एकही नक्षत्रमेंजायमान शील में समान नहीं होते जैसे बेर और उस के कांटे ॥ ४ ॥

निस्पृहोनाधिकारीस्यान्नाकामीमण्डनप्रियः ।
नाविदग्धः प्रियंब्रूयात् स्पष्टवक्तानवञ्चकः॥५॥

जिसको किसी विषय की वाञ्छा न होगी वह किसी विषय का अधिकारी नहीं होगा जो कामी न होगा वहशरीर की शोभा करने वाली वस्तुओं में प्रीति नहीं रक्खेगा जो चतुर न होगा वह प्रिय नहीं बोल सकेगा और स्पष्ट कहने वाला छली नहीं होगा ॥ ५ ॥

मूर्खाणांपण्डिता द्वेष्या अधनानांमहाधनाः ।
परांगनाः कुलस्त्रीणां सुभगानांचदुर्भगा ॥ ६ ॥

मूर्ख पण्डितों से, दरिद्री धनियों से, व्यभिचारिणिकुलीन स्त्रियों से और विधवा सुहागिनियों से बुरा मानती हैं ॥ ६ ॥

आलस्योपगताविद्या परहस्तेगतंधनम् ।
अल्पबीजंहतंक्षेत्रं हतंसैन्यमनायकम् ॥ ७ ॥

आलस्य से विद्या नष्ट होजाती है दूसरे के हाथ में जाने से धन निरर्थक हो जाता है बीजकी न्यूनता से खेत हत होता है सेनापति के विना सेन मारी जाती है ॥ ७ ॥

अभ्यासाद्धार्यतेविद्या कुलंशीलेनधार्यते ।
गुणेनज्ञायतेत्वार्यः कोपोनेत्रेणगम्यते ॥ ८ ॥

अभ्याससे विद्या सुशीलतासे कुल गुण से भलामनुष्य और नेत्रसे कोप ज्ञात होता है ॥ ८ ॥

वित्तेनरक्ष्यतेधर्मो विद्यायोगेनरक्ष्यते ।

मृदुनारक्ष्यतेभूपः सत्स्त्रियारक्ष्यतेगृहम् ॥ ९ ॥

धनसे धर्मको रक्षा होती है यम नियम आदि योग सेज्ञान रक्षित रहता है मृदुता से राजाकी रक्षा होती है भली स्त्रीसे घरकी रक्षा होती है ॥ ९ ॥

अन्यथा वेद पाण्डित्यं शास्त्रमाचारमन्यथा ।
अन्यथावदनाःशान्तंलोकाःक्लिश्यंतिचान्यथा १०

वेदके पाण्डित्य को व्यर्थ प्रकाश करनेवाला, शास्त्र और उसके आचार के विश्य में व्यर्थ विवाद करने वाला, शान्त पुरुषको अन्यथा कहनेवाला ये लोग व्यर्थही क्लेश उठाते हैं ॥ १० ॥

दारिद्यनाशनन्दानं शीलंदुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञाननाशिनीप्रज्ञा भावनाभयनाशिनी ॥११॥

दान दरिद्रता को नाश करताहै सुशीलता दुर्गतिको कोदूर कर देती है बुद्धि अज्ञान को नाश कर देती है भक्ति भय को नाश करती है ॥ ११

नास्तिकामसमोव्याधिर्नास्तिमोहसमोरिपुः ।
नास्तिकोपसमोवह्निर्नास्तिज्ञानात्परंसुखम् ॥१२॥

काम के समान दूसरी व्याधि नहीं है अज्ञान के समान दूसरा बैरी नहीं है क्रोध से प्रबल दूसरी आग नहीं है ज्ञान से परे सुख नहीं है ॥ १२ ॥

जन्ममृत्यू हियात्येको भुनक्त्येकःशुभाशुभम् ।
नरकेषुपतत्येकएकोयातिपरांगतिम् ॥ १३ ॥

यह निश्चय है कि एकही पुरुष जन्म मरण पाता है सुख दुःख एकही भोगता है एकही नरकों में पडता है और एकही मोक्ष पाता है अर्थात् इन कामों में कोई किसी की सहायता नहीं कर सकता ॥ १३ ॥

तृणं ब्रह्मविदःस्वर्गस्तृणंशूरस्य जीवितम् ।
जिताक्षस्य तृणं नारी निस्पृहस्य तृणं जगत्॥१४॥

ब्रह्मज्ञानी को स्वर्ग तृण है शूर को जीवन तृण है जिसने इन्द्रियों को वश किया उसे स्त्री तृण के तुल्य जान पडती है निस्पृह को जगत् तृण है ॥ १४ ॥

विद्यामित्रंप्रवासेषु भार्यामित्रंगृहेषुच ।
व्याधितस्यौषधंमित्रं धर्मो मित्रंमृतस्यच ॥ १५ ॥

विदेश में विद्या मित्र होता है गृह में भार्या मित्र है रोग का मित्र औषधि है और मरे का मित्र धर्म है ॥ १५ ॥

वृथावृष्टिःसमुद्रेषु वृथातृप्तेषुभोजनम् ।
वृथादानंधनाढ्येषु वृथादीपोदिवापिच ॥ १६ ॥

समुद्रों में वर्षा वृथा है और भोजन से तृप्त को भोजन

निरर्थक है धन धनी को दानदेना व्यर्थ है और दिनमें दीपक वृथा है ॥ १६ ॥

नास्तिमेघसमंतोयं नास्तिचात्मसमंबलम् ।
नास्तिचक्षुः समंतेजो नास्तिधान्यसमंप्रियम् ॥ १७ ॥

मेघ के जलके समान दूसरा जल नहीं होता अपने बल के समान दूसरे का बल नहीं इस कारण कि समय पर काम आता है नेत्र के तुल्य दूसरा प्रकाश करने वाला नहीं और अन्न के सदृश दूसरा प्रिय पदार्थ नहीं है ॥ १७ ॥

अधनाधनमिच्छंति वाचंचैवचतुष्पदाः ।
मानवाः स्वर्गमिच्छंति मोक्षमिच्छंतिदेवताः ।१८।

धनहीन धन चाहते हैं पशु वचन और मनुष्य स्वर्ग चाहते है और देवता मुक्ति की इच्छा रखते हैं । ५९ ।

सत्येनधार्यतेपृथ्वी सत्येनतपतेरविः ।
सत्येनवातिवायुश्च सर्वंसत्येप्रतिष्ठितम् ॥ १९ ॥

सत्य से पृथ्वी स्थिर है और सत्यही से सूर्य तपते हैं सत्यही से वायु बहती है सब सत्यही में स्थिर है ॥ २० ॥

चलालक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलेजीवितमन्दिरे ।
चलाचलेचसंसारे धर्मएकोहिनिश्चलः ॥ २० ॥

लक्ष्मी नित्य नहीं है प्राण जीवन और घर ये सब

चलायमान हैं चर अचर संसार में केवल धर्म ही निश्चल है। २०।

नराणांनापितोधूर्तः पक्षिणांचैववायसः।
चतुष्पदांशृगालस्तु स्त्रीणांधूर्ताचमालिनी ॥२१॥

पुरुषों में नापित (नाई) और पक्षियों में कौवा वंचक होता है पशुओं में सियार वंचक होता है और स्त्रियों में मालिन धूर्त होती है ॥ २१।

जनिताचोपनीताच यस्तुविद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाताभयत्राता पञ्चैतेपितरः स्मृताः २२ ॥

दो०-पिता मन्त्रदायक अपर, विद्याप्रद विख्यात।
दाता भय त्राता प्रगट, पंचहि पिता कहात ॥ २२ ॥

जन्माने वाला यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला जो विद्या देता है अन्न देनेवाला भय से बचानेवाला ये पांच पिता गिने जाते हैं ॥ २२ ॥

राजपत्नी गुरोःपत्नी मित्रपत्नीतथैवच।
पत्नीमातास्वमाताच पञ्चैतामातरः स्मृताः॥ २३

दो०-राजपतनी गुरुपतनि, पतनी मित्र बखान।
तिय माता निज मात यह, पंचइ मात समान ॥ २३ ॥

राजा की भार्या गुरु की स्त्री ऐसेही मित्र की पत्नी सासु और अपनी जननी इन पाँचों को माता कहते हैं ॥ २१ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



श्रुत्वाधर्मंविजानाति श्रुत्वात्यजतिदुर्मतिम् ।
श्रुत्वाज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वामोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

दो०-शास्त्रसुने जानत धरम, जियकी दुर्गति जाय ।
होत श्रवनतें ज्ञानहिय, श्रवन मुक्तिपदपाय ॥ १ ॥

मनुष्य शास्त्र को सुन कर धर्म को जानता है और शास्त्र सुन कर दुर्बुद्धि को छोड़ता है शास्त्र सुनकर ज्ञान पाता है और शास्त्र सुनकर मोक्ष पाता है ॥ १ ॥

पक्षिणांकाकचाण्डालः पशूनांचैवकुक्कुटः ।
मुनीनांपापचाण्डालः सर्वेश्चाण्डालनिन्दकः ॥२॥

पक्षियों में कौवा और पशुओं में कुक्कुट चाण्डाल होताहै मुनियों में चाण्डाल पाप है सब से चाण्डाल निन्दक है ॥२॥

भस्मनाशुद्ध्यतेकांस्यं ताम्रमम्लेनशुद्ध्यति ।
रजसाशुद्ध्यतेनारी नदीवेगेनशुद्ध्यति ॥ ३ ॥

कांसे का पात्र राख से शुद्ध होता है तांबे का मल खटाई से जाता है स्त्री रजस्वला होने पर शुद्ध हो जाती है और नदी धारा के वेग से पवित्र होती है ॥ ३

भ्रमन्सं पूज्यते राजा भ्रमन्सं पूज्यते द्विजः ।
भ्रमन्सं पूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यती ॥४॥

भ्रमण करने वाला राजा आदर पाता है घूमने वाला ब्राह्मण पूजा जाता है भ्रमण करने वाला योगी पूजित होता है परन्तु स्त्री घूमने से भ्रष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

यस्यार्थास्तस्यमित्राणि यस्यार्थास्तस्य बांधवाः ।
यस्यार्थाःसपुमांल्लोके यस्यार्थाःसचपंडितः ॥५॥

दो०—जिनके धन तेहिं मित बहु, जेहि धन बन्धु अनंत ।
धन सोइ जग में पुरुष वर, धन सोइ जग जीवंत ॥ ५ ॥

जिसके धन रहता है उसी के मित्र और जिसके सम्पत्ति उसी के बांधव होते हैं जिसके धन रहता है वही पुरुष गिना जाता है और जिसके धन होता है वही पण्डित कहाता है ॥

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृशः ।
सहायास्तादृशाएव यादृशीभवितव्यता ॥ ६ ॥

वैसीही बुद्धि और वैसाही उपाय होता है और वैसे ही सहायक मिलते हैं जैसी होनहार होती है ॥ ६॥

कालः पचतिः भूतानि काल संहरतेप्रजाः ।
कालः सुप्तेषुजागर्ति कालोहिदुरतिक्रमः ॥ ७ ॥

काल सब प्राणियों को खा जाता है और कालही सब प्रजा को नाश करता है सब पदार्थ के लय हो जाने पर काल जागता रहता है काल को कोई नहीं टाल सकता ॥ ७ ॥

नपश्यतिचजन्मांधः कामान्धोनैवपश्यति ।
मदोन्मत्ता नपश्यन्ति ह्यर्थी दोषान्नपश्यति॥८॥

जन्म का अन्धा नहीं देखता काम से जो अन्धा हो रहा है उसको सूझता नहीं मदोन्मत्त किसी को देखता नहीं और अर्थी दोष को नहीं देखता ॥ ८ ॥

स्वयंकर्मकरोत्यात्मा स्वयन्तत्फलमश्नुते ।
स्वयंभ्रमति संसारे स्वयन्तस्माद्विमुच्यते ॥ ९ ॥

जीव आपही कर्म करता है और उसका फल भी आपही भोगता है आपही संसार में भ्रमता है और आपही उससे मुक्त भी होता है ॥ ९ ॥

राजाराष्ट्रकृतम्पापं राज्ञःपापंपुरोहितः ।
भर्ताच स्त्रीकृतंपापं शिष्या पापं गुरुस्तथा ॥१०॥

अपने राज्य में किये हुए पाप को राजा और राजा के

पाप को पुरोहित भोगता है स्त्रीकृत पाप को पति भोगता है ऐसे ही शिष्य के पाप का गुरु ॥ १० ॥

ऋणकर्त्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी ।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥ ११ ॥

ऋण करनेवाला पिता शत्रु है व्यभिचारिणी माता और सुन्दरी स्त्री शत्रु है और मूर्ख पुत्र वैरी है ॥ ११ ॥

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्धमंजलिकर्मणा ।
मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च यथार्थत्वेन पण्डितम् ॥ १२ ॥

दो०—धनदे लोभी करिय वस, दीठ जोरि जुगहात ।
कहै सुकरिके मूढ कूं, बिवुध जथारथ बात ॥ १२ ॥

लोभी को धन से अहंकारी को हाथ जोडने से, मूर्ख को उसके अनुसार बर्तने से, और पण्डित को सचाई से वश करना चाहिये ॥ १२ ॥

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम् ।
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो
वरं न दारा न कुदारदाराः ॥ १३ ॥

राज्य न रहना यह अच्छा परन्तु कुराजा का राज्य होना यह अच्छा नहीं, मित्र का नहोना यह अच्छा पर कुमित्र

को मित्र करना अच्छा नहीं, शिष्य न हो यह अच्छा पर निन्दित शिष्य शिष्य कहलावे यह अच्छा नहीं भार्या न रहै यह अच्छा पर कुभार्या का भार्या होना अच्छा नहीं ॥ १३ ॥

कुराजराज्येनकुतः प्रजासुखं
कुमित्रमित्रेणकुतोऽभिनिर्वृतिः ॥
कुदारदारैश्चकुतोगृहेरतिः
कुशिष्यमध्यापयतः कुतोयशः ॥ १३ ॥

दो०—सुख कहां प्रजा कुराज तें, मित्र कुमित्र न श्रेय ।
कहँ कुदार तें गेह सुख, कहँ कुशिष्य जसदेय ॥ १४ ॥

दुष्ट राजा के राज्य में प्रजाको सुख कैसे होसकता है कुमित्र मित्रसे आनन्द कैसे होसक्ता है दुष्ट स्त्रीसे गृह में प्रीति कैसे होगी और कुशिष्यको पढानेवाले की कीर्ति कैसे होगी १४

सिंहादेकंबकादेकं शिक्षेच्चत्वारिकुक्कुटात् ।
वायसात्पञ्चशिक्षेच्च षट्शुनस्त्रीणिगर्दभात् ॥१५॥

दोहा— इक गुण सिंह रु बकनतें, अरु कुक्कुटतें चारि ।
काक पंच षट श्वान तें, गरदभ तीन विचारि ॥ १५ ॥

सिंह से एक बक्कुलेसे एक कुक्कुट से चार बातें सीखना चाहिये कौवेसे पांच कुत्ते से छः और गदहे से तीनगुण सीखना उचित हैं ॥ १५ ॥

प्रभूतंकार्यमल्पंवा यन्नरः कर्त्तुमिच्छति ।
सर्वारम्भेणतत्कार्यं सिंहादेकंप्रचक्षते ॥ १६ ॥

दोहा—अति उन्नत कारज कछू, किय चाहत नर कोय ।
कैरै अनत आरंभते, गहत सिंह गुनसोय ॥ १६ ॥

कार्य्य छोटाहो वा बड़ा जो करणीय हो उसको सब प्रकारके प्रयत्न से करना उचित है इसे सिंहसे एक सीखना कहते हैं ॥ १६ ॥

इन्द्रियाणिचसंयम्य बकवत्पण्डितोनरः ।
देशकालबलंज्ञात्वा सर्वकार्याणिसाधयेत् ॥ १७ ॥

दो०—देश काल बल जानिकै, गहि इंद्रियको ग्राम ।
बक जैसे पण्डित पुरुष, कारज कर हित मान ॥ १७ ॥

विद्वान पुरुषको चाहिये कि इन्द्रियों का संयम करकेदेश काल और बलको समझ कर समान सबकार्यको साधै ॥ १७ ॥

प्रत्युत्थानञ्चयुद्धञ्च संविभागञ्चबन्धुषु ।
स्वयमाक्रम्यभुक्तञ्च शिक्षेच्चत्वारिकुक्कुटात् ॥ १८ ॥

दोहा—प्रथम उठै जुधमें जुरै, बन्धु विभागहि देत ।
निज भुज भोजन करै, कुक्कुट गुन चहुलेत ।

उचित समय में जागना रणमें उद्यत रहना और बन्धुओं को भाग देना और आप आक्रमण करके भोजन करना इन चार बातों को कुक्कुट से सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

गूढमैथुनचारित्वं कालेकालेचसंग्रहम् ।
अप्रमत्तमविश्वासं पंचशिक्षेच्चवायसात् ॥१९॥

दोहा- अधिक धीठ अरु गूढरति, समय सुआलय संच ।
नहिं विश्वास प्रमाद जेहि, गहै वायस गुन पंच ॥ १९ ॥

छिप कर मैथुन करना समय २ पर संग्रह करना सावधान रहना और किसी पर विश्वास न करना इन पांचों को कौवे से सीखना उचित है ॥ १९ ॥

बह्वाशीस्वल्पसन्तुष्टः सनिद्रोलघुचेतनः ।
स्वामिभक्तश्चशूरश्च षडेतेश्वानतोगुणाः ॥ २० ॥

दोहा- वहु भुक थोरेहुतोष अति, सोवहि शीघ्रजगात ॥
स्वामिभक्त वडवीरता, षट गुण श्वान गहात ॥ २० ॥

बहुत खाने की शक्ति रहते भी थोड़े ही से संतुष्ट होना गाढी निद्रा रहते भी झटपट जागना स्वामी की भक्ति और शूरता इन छः गुणों को कुक्कुट से सीखना चाहिये ॥ २० ॥

सुश्रान्तोऽपिवहेद्भारं शीतोष्णेनचपश्यति ।
संतुष्टश्चरतेनित्यं त्रीणिशिक्षेच्चगर्दभात् ॥२१॥

दोहा। भार वहत थाकतनहीं, शीत उष्ण समजाहि ।
हिये अधिक संतोष गुन. गरदभतीन गहाहि ॥ २१ ॥

अत्यन्त थक जाने परभी बोझा को ढोते जाना शीत

और उष्ण पर दृष्टि न देना सदा सन्तुष्ट होकर विचरना इनतीन बातों को गदहे से सीखना चाहिये ॥ ११ ॥

यएतान् विंशतिगुणानांचरिष्यतिमानवः ।
कार्यावस्थासुसर्वासु अजेयः सभविष्यति॥ २२॥

दोहा-विंसतिसीखविचारि यह, जो नर उर धारंत ।
सो सबनर्जीततअवस, जय नास जगत लहंत ॥ २२॥

जोनर इन बीस गुणों को धारण करेगा वह सदा सब कार्यों में विजयी होगा ॥ २१ ॥

इति वृद्धचाणक्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



अर्थनाशं मनस्तापं गृहिणी चरितानिच ।
नीचवाक्यं चापमानं मतिमान्नप्रकाशयेत् ॥ १॥

दोहा-अरथ नाश मन ताप अरु. दुर चरित्र घरमाहिं ।
वंचनता अपमान निज. सुघर प्रकाशत नांहि ॥ १ ॥

धनका नाश मनका ताप गृहणी का चरित्र नीच का वचन और अपमान इनको बुद्धिमान न प्रकाश करै ॥ १ ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषुच ।
आहारेव्यवहारेच त्यक्तलज्जासुखीभवेत् ॥ २ ॥

दो०-संचित धन अरु धानकूं विद्या सीखत यार ।
करत अहार व्यवहारकूं लाज न करिये लगार ॥ २ ॥

अन्न और धन के व्यापार में विद्या के संग्रह करने में आहार और व्यवहार में जो पुरूष लज्जा को दूर रक्खेगा वह सुखी होगा ॥२ ॥

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेवच ।
नचतद्धनलुब्धानामितश्चेतश्चधावताम् ॥ ३ ॥

दोहा- तृपद सुधा संतोष चित, शांत लहत सुख सोय ।
इत उत दौरत, लोभ धन, कहँ सो सुख तेहि होय ॥३॥

सन्तोष रूप अमृत से जो लोग तृप्त होते हैं उनको जो शान्तिसुख होता है वह धन के लोभियों को जो इधर उधर दौड़ा करते हैं उन्हें नहा होता ॥ ३ ॥

संतोषस्त्रिषुकर्तव्यः स्वदारेभोजनेधने ।
त्रिषुचैवनकर्त्तव्योऽध्ययनेजपदानयोः ॥ ४ ॥

दोहा-तीन ठौर संतोष धर, तियभोजन धन मांहि ।
दानन में अध्ययन में, तप में कीजिये नांहि ॥ ४ ॥

अपनी स्त्री भोजन और धन इन तीनों में सन्तोष करना चाहिये पढ़ना जप और दान इन तीन में सन्तोष कभी न करना चाहिये ॥ ४ ॥

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योःस्वामिभृत्ययोः।
अन्तरेणनगंतव्य हलस्य वृषभस्य च ॥ ५ ॥

दो ब्राह्मण विप्र और अग्नि, स्त्री पुरुष, स्वामी और भृत्य ह: ल और बैल इनके मध्य होकर नहीं जाना चाहिये ॥ ५ ॥

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च।
नैवगां कुमारीं च न वृद्धन्नशिशुन्तथा ॥ ६ ॥

दो०—अनल विप्र अरुधेनु पुनि, कन्या कुमारी देति।
बालक अरुबुधिवन्तकै, पग न लगावहुपाति ॥ ६ ॥

अग्नि गुरु और ब्राह्मण इनको पैर से कभी नहीं छूना चाहिये वैसे ही न गौ को न कुमारी को न वृद्ध को न बालकको पैर से छूना चाहिये ॥

शकटं पंचहस्तेन दशहस्तेनवाजिनम्।
हस्तिहस्तसहस्रेण देशत्यागेनदुर्जनः ॥ ७ ॥

दोहा हस्ती हाथ हजार तज. सब हाथनतें वाजि ॥
शृंगसहितसोंहिहाथदस, दुष्टदेशतजिभाजि ॥ ७ ॥

गाड़ी को पांच हाथपर घोडे को दश हाथ पर हाथी को हजार हाथपर दुर्जन को देश त्याग करके छोडना चाहिये ॥ ७

हस्ती अंकुशमात्रेण वाजी हस्तेनताड्यते।
शृंगी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेनदुर्जनः ॥ ८ ॥

दो० हस्ती अंकुसतैं हनिय, ताजन पकरि तुरंग ।
सृंगधरनकूं लकुटतैं, असितैं दुर्जन भंग ॥ ८ ॥

हाथी केवल अंकुश से घोड़ा हाथ [चाबुक] से माराजाता है सींगवाले जन्तु लाठीयुत हाथ से और दुर्जन तलवार सेयुक्त हाथ से दण्ड पाते हैं ॥ ८ ॥

तुष्यन्तिभोजनेविप्राः मयूराघनगर्जिते ।
साधवः परसम्पत्तौ खला परविपत्तिषु ॥ ९ ॥

भोजन के समय ब्राह्मण और मेघके गर्जने पर मयूर दूसरे को सम्पति प्राप्त होने पर साधु और दूसर को विपत्ति आने पर दुर्जन सन्तुष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम् ।
आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेनवा ॥ १० ॥

दोहा—बलवंतरहि अनकूलहि, प्रतिकूलहिबलहीन ।
अतिबलसमबलशत्रुको. विनयबलहि वशकीन ॥ १० ॥

बली वैरी को उसके अनुकूल व्यवहार करने से यदि वह दुर्जन हो तो उसे प्रतिकूलता से वश करे बल में अपने समान शत्रु को विनय से अथवा बल से जीते ॥ ११ ॥

बाहुवीर्यबल राज्ञो ब्राह्मणोब्रह्मविद्बली ।
रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ॥ ११ ॥

राजा को बाहुवीर्य बल है और ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी और वेदपाठीबली होता है और स्त्रियों को सुन्दरता तरुणता और मधुरता अति उत्तम बल है ॥ ११ ॥

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्यवनस्थलीम् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्तिपादपाः १२

दो०—अतिही सरल न हूजिये, देखहु जन वनमांहि ।
तरु सीधे छेदत तिनहि, बांके तरु बचजांहि ॥ १२ ॥

अत्यन्त सीधे स्वभाव से नहीं रहना चाहिये इस कारण कि वन में जाकर देखो सीधे वृक्ष काटे जाते हैं और टेढ़ेखडे रहते हैं ॥ ११ ॥

यत्रोदकं तत्र वसन्ति हंसा ।
स्तथैवशुष्कं परिवर्जयन्ति ।
न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं
पुनस्त्यजन्तः पुनराश्रयन्ते ॥ १४ ॥

दोहा—सजलसरोवरहंसबसि, सूकतटहि हैं सोइ ॥
देखि सजल आवत बहुरि, हंस समान न होइ ॥ १३ ॥

जहां जल रहता है तहां ही हंस बसते हैं वैसे ही सूखे सरको छोड देते हैं नर को हंस के समान नहीं रहना चाहिये कि वे बार बार छोड देते हैं और बारंबार आश्रय लेते हैं ॥

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् ।
तडागोदरसंस्थानां परिस्रव इवांभसाम् ॥ १४ ॥

दोहा-धन संग्रह को पेषिये प्रगट दान प्रतिपाल ।
ज्यों मोरी जल जानकूं तव नाहिं फूटत ताल ॥ १४ ॥

अर्जित धनों का व्यय करना ही रक्षा है जैसे तडाग के भीतर के जलका निकलना ॥ १४ ॥

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बांधवाः ।
यस्यार्थः स पुमांल्लोके यस्यार्थः स च जीवति ॥ १५ ॥

दो०-जिनके धन तेहि मित बहु, जेहि धन बंधु अनंत ।
धन सोइ जगमें पुरुषवर, धन सोइ जगजीवंत ॥ १५ ॥

जिसके धन रहता है उसी के मित्र होते हैं जिसके पास अर्थ रहता है उसी के बन्धु होते हैं जिस के धन रहता है वही पुरुष गिना जाता है जिसके अर्थ हैं वही जीता है ॥ १५ ॥

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके
चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे ।
दानप्रसंगो मधुरा च वाणी
देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥ १६ ॥

संसार में आने पर स्वर्ग स्थानियों के शरीर में चार चिह्न रहते हैं दान का स्वभाव मीठा वचन देवता की पूजा ब्राह्मण

को तृप्त करना अर्थात् जिन लोगों में दान आदि लक्षण रहैं उनको जानना चाहिये कि वे अपने पुण्य के प्रभाव से स्वर्गवासी मृत्युलोक में अवतार लिये हैं ॥ १६ ॥

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी
दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम् ।
नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा
चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥१७॥

अत्यन्त क्रोध, कटुवचन, दरिद्रता, अपने जनों में वैर, नीच का संग, कुलहीन की सेवा, ये चिह्न नरकवासियों के देहों में रहते हैं ॥ १७ ॥

गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिरं
लभ्यते करिकपोलमौक्तिकम्
जम्बुकालयगते च प्राप्यते
वत्सपुच्छखरचर्मखण्डनम् ॥ १८ ॥

यदि कोई सिंह की गुहा में जा पड़े तो उसको हाथी के कपाल का मोती मिलता है और सियार के स्थान में जानेपर बछवे की पूंछ और गदहे के चमड़े का टुकड़ा मिलता है ॥ १८ ॥

शुनः पुच्छमिवव्यर्थं जीवितं विद्यया विना ।
न गुह्यगोपनेसक्तं न च दंशानिवारणे ॥ १९ ॥

कुत्ते की पूंछ के समान विद्या विना जीना व्यर्थ है। कुत्ते की पूंछ गोप्य इन्द्रिय को ढांप नहीं सक्ती है न मच्छड़ आदि जीवों को उड़ा सक्ती है ॥ १९ ॥

वाचांशौचं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदयाशौचमेतच्छौचं परार्थिनाम् ॥ २० ॥

वचन की शुद्धि, मन की शुद्धि, इन्द्रियों का संयम जीवों पर दया और पवित्रता ये परार्थियों की शुद्धि है ॥ २१ ॥

पुष्पेगन्धंतिलेतैलं काष्ठेवह्निंपयोघृतम् ।
इक्षौगुडंतथादेहे पश्यात्मानं विवेकतः ॥ २१ ॥

जैसे फूल में गन्ध, तिल में तेल, काष्ठ में आग, दूध में घी, ऊखमें गुड़ वैसेही देहमें आत्माको विचार से देखो ॥ २१ ॥

इति वृद्धचाणक्येसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



अधमाधनमिच्छन्ति धनंमानंचमध्यमाः ।
उत्तमामानमिच्छन्ति मानोहिमहतां धनम् ॥ १ ॥

अधम धन ही चाहते हैं मध्यम धन और मान उत्तम मानही चाहते हैं क्योंकि महात्माओं का धन मानही है ॥ १ ॥

इक्षुरापः पयोमूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वापिकर्तव्यः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥२॥

ईख, जल, दूध, मूल, पान, फल और औषधि इन वस्तुओं के भोजन करने पर भी स्नान दान आदि क्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

दीपोभक्षयतेध्वान्तं कज्जलंच प्रसूयते ।
यदन्नं भक्ष्यतेनित्यं जायते तादृशीप्रजा ॥ ३ ॥

दीप अन्धकार को खा जाता है और काजल को जमाता है । सत्य है जैसा अन्न सदा खाता है उसको वैसीही सन्तति होती है ॥ ३ ॥

वित्तं देहिगुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्रदेहिक्वचित् ।
प्राप्तं वारिनिधेर्जलंघनमुखेमाधुर्ययुक्तंसदा ॥
जीवांस्थावरजंगमांश्चसकलांसंजीव्यभूमण्डलं ।
भूयःपश्यतदेवकोटिगुणितंगच्छंतमम्भोनिधिम् ॥४॥

हे मतिमन् ! गुणियों को धन दो, औरों को कभी मत दो । समुद्र से मेघ के मुख में प्राप्त होकर जल सदा मधुर हो जाता है और पृथ्वी पर चर अचर सब जीवों को जिलाकर फिर वही जल कोटि गुणा होकर उसी समुद्र में चला जाता है ॥ ४ ॥

चाण्डालानांसहस्रैश्च सूरिभिस्तत्वदर्शिभिः ।

एकोहियवनः प्रोक्तो न नीचोयवनात्परः ॥ ५ ॥

तत्त्वदर्शियों ने कहा कि सहस्र चाण्डालों के तुल्य एक यवन होता है और यवन से नीच दूसरा कोई नहीं है ॥ ५ ॥

तैलाभ्यंगेचिताधूमे मैथुनेक्षौरकर्मणि ।

तावद्भवतिचाण्डालो यावत्स्नानं समाचरेत् ॥६॥

तेल लगाने पर, चिता के धूम लगाने पर, स्त्री प्रसंग करने पर, बाल बनवाने पर मनुष्य तब तक चाण्डालही बना रहता है जब तक स्नान नहीं करता ॥ ६ ॥

अजीर्णेभेषजंवारिजीर्णेवारिबलप्रदम् ।

भोजनेचामृतंवारि भोजनान्तेविषप्रदम् ॥ ७ ॥

अपच होनेपर जल औषधि के समान है, पचजाने पर वह बलको देता है। भोजन के समय पानी अमृत के समान है किन्तु भोजन के अन्त में विषका फल देता है ॥ ७ ॥

हतंज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतोनरः ।

हतन्निर्नायकं सैन्यं स्त्रियोनष्टाह्यभर्तृकाः ॥८॥

क्रिया के विना ज्ञान व्यर्थ है, अज्ञान से नर मारा जाता है, सेनापति के विना सैना मारी जाती है, स्वामिहीन स्त्री नष्ट हो जाती है ॥ ८ ॥

वृद्धकालेमृताभार्या बन्धुहस्तगतंधनम् ।
भोजनेचपराधीनं तिस्त्रः पुंसांविडम्बना ॥ ९ ॥

बुढ़ापे में मरी स्त्री, बन्धु के हाथ में गया धन, दूसरे के आधीन भोजन ये तीन पुरुषों की विडम्बना हैं अर्थात् दुःख दायक होते हैं ॥ ९ ॥

अग्निहोत्रं विनावेदा नचदानं विनाक्रियाः ।
न भावेन विना सिद्धि स्तस्माद्भावोहि कारणम् ॥

अग्निहोत्र के बिना वेद का पढ़ना व्यर्थ होता है, दान के बिना यज्ञादि क्रिया नहीं बनती, भाव के बिना कोई सिद्धि नहीं होती इस हेतु प्रेमही सबका कारण है ॥ १० ॥

न देवोविद्यतेकाष्ठे न पाषाणे न मृन्मये ।
भावोहिविद्यतेदेवस्तस्माद्भावोहिकारणम् ॥ ११ ॥

दो०—देवनकाठ पषाणमृत, मूरतिमें न रहाय ।
भाव तहांहि देवभल, कारन भाव कहाय ॥ ११ ॥

देवता काठ में नहीं हैं न पाषाण में हैं न मृत्तिका की मूर्ति में है। निश्चय है कि देवता भाव में विद्यमान है, इस हेतु भा वही सबका कारण है ॥ ११ ॥

शान्तितुल्यंतपोनास्ति न सन्तोषात्परंसुखम् ।
न तृष्णायाःपरोव्याधिर्नचधर्मोदयापरः ॥ १२ ॥

दो०—नहिं संतोष समान सुख, तप न क्षमा सम आन।
तृष्णा सम नहिं व्याधि तन, धरम न दया समान ॥१२॥

शान्ति के समान दूसरा तप नहीं है, न सन्तोष से परे सुख, न तृष्णा से दूसरी व्याधि है न दया से अधिक धर्म॥१२॥

क्रोधोवैवस्वतोराजा तृष्णावैतरणीनदी।
विद्याकामदुघाधेनुः सन्तोषोनन्दनंवनम् ॥ १३॥

दो०। तृष्णा वैतरणी नदी, धरम राज सम रोष।
काम धेनु विद्या कहिय, नन्दन वन संतोष ॥ १३ ॥

क्रोध यमराज है और तृष्णा वैतरणी नदी है विद्या काम धेनु गाय है और सन्तोष इन्द्र की वाटिका है ॥ १३ ॥

गुणोभूषयतेरूपं शीलंभूषयतेकुलम्।
सिद्धिर्भूषयतेविद्या भोगोभूषयतेधनम् ॥ १४ ॥

दो० । गुन भूषन है रूपको, कुलको शील कहाय।
विद्या भूषण सिद्धि धन, धन तेहि खरच बताय॥१४॥

गुण रूपको भूषित करता है शील कुलको अलंकृत करता है, सिद्धि विद्याको भूषित करती है और भोग धनको भूषित करता है ॥ १४ ॥

निर्गुणस्यहतंरूपं दुःशीलस्यहतंकुलम्।
असिद्धस्यहताविद्या अभोगेनहतंधनम् ॥ १५ ॥

निर्गुणकी सुन्दरता व्यर्थ है शीलहीन का कुल निन्दित होता है, सिद्धिके बिना विद्या व्यर्थ है, भोग के बिना धन व्यर्थ है ॥ १५ ॥

शुद्धम्भूमिगतंतोयं शुद्धानारीपतिव्रता ।
शुचिःक्षेमकरोराजा सन्तोषीब्राह्मणःशुचिः॥१६॥

भूमिगत जल पवित्र होता है, पतिव्रता स्त्री पवित्र होती है, कल्याण करने वाला राजा पवित्र गिना जाता है, सन्तोषी ब्राह्मण शुद्ध होता है ॥ १६ ॥

असंतुष्टाद्विजानष्टाः संतुष्टाश्चमहीभृतः ।
सलज्जागणिकानष्टा निर्लज्जाश्चकुलांगनाः॥१७॥

दो०—असंतोष तें विप्रहत नृप सँतोष तें ख्वारि ।
गणिका विनसतलाजतें,लाज बिना कुल नारि ॥ १७ ॥

असंतोषी ब्राह्मण निन्दित गिने जाते हैं और संतोषी राजा, सलज्जा वेश्या और लज्जाहीन कुल स्त्री निन्दित गिनी जाती हैं ॥ १७ ॥

किंकुलेनविशालेन विद्याहीनेनदेहिनाम् ।
दुष्कुलंचापिविदुषो देवैरपिसुपूज्यते ॥१८॥

दो०—कहा होत बड संगतैं, जोनर विद्या हीन ।
परषद सुरतैं पूजिये, विद्या तैं अकुलीन ॥ १८ ॥

विद्याहीन बड़े कुल से मनुष्यों को क्या लाभ है विद्वान का नीचभी कुल देवता से पूजा पाता है ॥ १८ ॥

विद्वान्प्रशस्यतेलोके विद्वान्सर्वत्रगौरवम् ।
विद्ययालभतेसर्वं विद्यासर्वत्रपूज्यते ॥ १९ ॥

संसार में विद्वान् ही प्रशंसित होता है, विद्वान ही सब स्थान में आदर पाता है. विद्या ही से सब मिलता है विद्याही सब स्थान में पूजित होती है ॥ १९ ॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धाइवकिंशुकाः॥२०॥

दो०–संयुतजोवन रूपतें, कहियत बडे कुलीन ।
विद्या विन सोहै न जिमि, पुहुप गंध तें हीन ॥ २० ॥

सुन्दर तरुणतायुत और बडे कुलमें उत्पन्न भी विद्याहीन नहीं शोभते जैसे विना गंध के ढाकके फूल ॥ २० ॥

मांसभक्ष्याःसुरापाना मूर्खाश्चाक्षरवर्जिताः ।
पशुभिः पुरुषाकारैभाराक्रांतास्तिमेदिनी ॥ २१ ॥

मांस के भक्षण करने वाले, मदिरा पान करने वाले, निरक्षर मूर्ख, पुरुषाकार पशुओं के भार से पृथ्वी पीड़ित रहती है ॥ २१ ॥

अन्नहीनोदहेद्राष्ट्रमन्नहीनश्चमन्त्रविजः ।
यजमानंदानहीनोनास्तियज्ञसमोरिपुः ॥ २२ ॥

यज्ञ यदि अन्नहीन हो तो, राज्य को मंत्र हीन हो तो ऋत्विजों को दानहीन हो तो यजमान को जलाता है इस कारण यज्ञ के समान कोई शत्रु भी नहीं है ॥ २२ ॥

इति वृद्धचाणक्येऽष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥



मुक्तिमिच्छसिचेत्तात विषयान् विषवत्यज ।
क्षमार्जनदयाशौचं सत्यंपीयूषवत्पिव ॥ १

हे भाई ! यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विषके समान छोड़ दो सहनशीलता, सरलता दया, पवित्रता और सचाई को अमृत के समान पीओ ॥ १ ॥

परस्परस्यमर्माणि येभाषन्तेनराधमाः ।
तएवविलयंयान्ति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥ २ ॥

जो नराधम परस्पर अन्तरात्मा के दुखदायक वचन को भाषण करते हैं निश्चय है कि वे नष्ट हो जाते हैं जैसे बांबी में पड़कर सांप ॥ २ ॥

गन्धः सुवर्णेफलमिक्षुदंडे ।
नाकारिपुष्पंखलुचन्दनस्य ।

विद्वान्धनीनृपतिर्दीर्घजीवी ।
धातुः पुराकोऽपिनबुद्धिदोऽभूत ॥ ३ ॥

सुवर्ण में गन्ध, ऊख में फल, चंदन में फूल, विद्वान् धनी, राजा चिरंजीवी न किया इससे निश्चयहैकि विधाताको पहिले कोई बुद्धिदाता न था ॥ ३ ॥

सर्वौषधीनाममृताः प्रधानाः
सर्वेषुसौख्येष्वशनंप्रधानम् ।
सर्वेन्द्रियाणांनयनंप्रधानं
सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥ ४ ॥

सब औषधियों में गिलोय प्रधान है. सब सुख में भोजन श्रेष्ठ है सब इन्द्रियों में आंख उत्तम है, सब अंगों में शिर श्रेष्ठहै ॥४॥

दूतोनसंचरतिखेनचलेच्चवार्त्ता
पूर्वंनजल्पितमिदंनचसंगमोऽस्ति ॥
व्योम्निस्थितंरविशशिग्रहणंप्रशस्तं
जानातियोद्विजवरःसकथंनविद्वान्॥५॥

आकाश में दूत न जा सक्ता न वार्ता की चर्चा चलसकती न पहिलेही से किसी ने कह रक्खा है. न किसी से संगम होस-

का ऐसी दशामें आकाश में स्थित सूर्य चन्द्रके ग्रहणको जो द्विजवर स्पष्ट जानता है वह कैसे विद्वान नहीं है ॥ ५ ॥

विद्यार्थीसेवकः पांथः क्षुधार्तोभयकातरः ॥
भांडारीप्रतिहारीच सप्तसुप्तान्प्रबोधयेत् ॥ ६ ॥

विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूखसे पीड़ित, भयसे कातर, भंडारी, द्वारपाल ये सात यदि सोतेहों तो जगादेना चाहिये ॥ ६ ॥

अहिंनृपंचशार्दूलं वृटिंचबालकंतथा ।
परश्वानंचमूर्खंच सप्तसुप्तान्नबोधयेत् ॥ ७ ॥

सांप, राजा, व्याघ्र, वर्र, बालक, दूसरे का कुत्ता, और मूर्ख ये सात सोते हों तो नहीं जगाना चाहिये ॥ ७ ॥

अर्थाधीताश्चयैर्वेदास्तथाशूद्रान्नभोजिनः ॥
तेद्विजाः किंकरिष्यंति निर्विषाइवपन्नगाः ॥ ८ ॥

जिन्होंने धनके अर्थ वेदको पढ़ा वैसेही जो शूद्रका अन्न भोजन करते हैं वे ब्राह्मण विषहीन सर्पके समान क्या कर सके हैं ॥ ८ ॥

यस्मिन्रुष्टेभयंनास्ति तुष्टेनैवधनागमः ॥
निग्रहोऽनुग्रहोनास्ति सरुष्टः किंकरिष्यति ॥ ९ ॥

जिसके क्रोधित होनेपर न भय है, न प्रसन्न होने पर धनका

लाभ है, न दण्ड या अनुग्रह होसकता है वह रुष्ट होकर क्या करेगा ॥ ९ ॥

निर्विषेणापिसर्पेणकर्तव्यामहतीफणा ॥
विषमस्तुनचाप्यस्तु घटाटोपोभयंकरः ॥ १० ॥

विषहीन भी सांपको अपनी फण बढ़ाना चाहिये क्योंकि विष हो या न हो आडम्बर भयजनक होताहै ॥ १० ॥

प्रातर्द्यूतप्रसंगेन मध्याह्नेस्त्रीप्रसंगतः ॥
रात्रौचौरप्रसंगेन कालोगच्छतिधीमताम् ॥ ११ ॥

प्रातः काल में जुआरियोंकी कथा से अर्थात् महाभारत से, मध्यान्हमेंस्त्रीप्रसंगसे, अर्थात् रामचन्द्र, रात्रिमें चोरकी वार्तासे अर्थात् भागवत की वार्तासे बुद्धिमानों का समय बीतता है ॥ तात्पर्य यह कि महाभारत के सुनने से यह निश्चय होजाता है कि जुवा कलह और छल का घर है । इसलोक और परलोक में उपकार करनेवाले कामोंको महाभारत में लिखी हुई रीतियों से करनेपर उन कामोंका पूरा फल होता है इस कारण बुद्धिमान लोग प्रातः कालही में महाभारत को सुनते हैं जिसमें दिनभर उसी रीतिसे काम करते जांय । रामायण सुनने से स्पष्ट उदाहरण मिलता है कि स्त्री के वश होनसे अत्यन्त दुःख होताहै और परस्त्रीपर दृष्टि देने से पुत्र कलत्र जडमूलके साथ पुरुष का नाश होजाता है इस

हेतु मध्याह्न में अच्छे लोग रामायणको सुनते हैं और प्रायः रात्रि में लोग इन्द्रियों के वश होजाते हैं और इन्द्रियोंका यह स्वभाव है कि मनको अपने २ विषयों में लगाकर जीवको विषयों में लगादेती हैं इसी हेतुसे इन्द्रियों को आत्मापहारिणीकहते हैं। जो लोग रातको भागवत सुनते हैं वे कृष्ण के चरित्र को स्मरण करके इन्द्रियों के वश नहीं होते क्योंकि सोलह हज़ार से अधिक स्त्रियोंके रहते भी श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रियों के वश न हुए और इन्द्रियों के संयमकी रीति भी जान जाते हैं ॥११॥

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टचन्दनम् ।
स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥१२॥

अपने हाथ से गुथी माला, अपने हाथ से घिसा चन्दन, अपने हाथ से लिखा स्तोत्र ये इन्द्रकी भी लक्ष्मी को हरलेते हैं ॥ १२ ॥

इक्षुदण्डास्तिलाः शूद्राः कान्ता हेम च मेदिनी ।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुणवर्द्धनम् ॥ १२ ॥

ऊख, तिल, शूद्र, कांता, पृथ्वी, चंदन, दही. पान. ये ऐसे पदार्थ हैं कि इनका मर्दन गुणवर्धन है ॥ १३ ॥

दरिद्रता धीरतया विराजते
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ।

कदन्नताचोष्णतयाविराजते
कुरूपताशीलतयाविराजते ॥ १४ ॥

दरिद्रता भी धीरता से शोभती है, स्वच्छता से कुवस्त्र सुंदर जान पड़ता है, कुअन्न भी उष्णता से मीठा लगता है कुरूपता भी सुशीलता हो तो शोभती है ॥ १४ ॥

इति वृद्धचाणक्येनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ वृद्धचाणक्यस्योत्तरार्द्धम् ॥

धनहीनोनहीनश्च धनीकः सखुनिश्चयः ।
विद्यारत्नेनहीनोयः सहीनः सर्ववस्तुषु ॥१॥

दो०—हीननहीं धनहीन जन, धन थिर नाहिं प्रवीन ।
हीन न और बखानिये, विद्याहीनसुहीन ॥ १ ॥

धनहीन हीन नहीं गिनाजाता, निश्चय है कि वह धन हीन है। विद्या रत्न से जो हीनहै वह सब वस्तुओं में हीन है ॥१॥

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतंपिबेज्जलम् ।
शास्त्रपूतंवदेद्वाक्यं मनः पूतंसमाचरेत् ॥ २ ॥

दृष्टि से शोधकर पांव रखना उचित है, वस्त्रसे शुद्ध कर जल पीवे, शास्त्र से शुद्ध कर वाक्य बोले, मन से सोचकर कार्य करना चाहिये ॥ २ ॥

सुखार्थीचेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थीचेत्त्यजेत्सुखम् ।
सुखार्थिनःकुतोविद्याः सुखंविद्यार्थिनःकुतः ॥ ३ ॥

यदि सुख चाहै तो विद्याको छोडदे. यदि विद्या चाहै तो सुखको त्याग करे. सुखार्थी को विद्या कैसे होगी और विद्यार्थी को सुख कैसे होगा ॥ ३ ॥

कवयः किन्नपश्यन्ति किन्नकुर्वन्तियोषितः ।
मद्यपाःकिन्नजल्पन्ति किन्नखादन्ति वायसाः ॥४॥

कवि क्या नहीं देखते. स्त्री क्या नहीं कर सक्ती मद्यपी क्या नहीं बकते, कौवे क्या नहीं खाते ॥ ४ ॥

रङ्कंकरोतिराजानं राजानं रङ्कमेवच ।
धनिनं निर्द्धनं चैव निर्द्धनं धनिनं विधिः ॥ ५ ॥

निश्चय है कि विधि रंक को राजा, राजको रंक. धनीको निर्द्धन और निर्द्धन को धनी कर देता है ॥ ५ ॥

लुब्धानां याचकः शत्रुर्मूर्खाणां बोधकोरिपुः ।
जारस्त्रीणांपतिः शत्रुश्चौराणां चन्द्रमारिपुः ॥६॥

लोभियों को याचक वैरी होता है. मूर्खों को समझाने वाला शत्रु होता है, पुंश्चली स्त्रियोंको पति शत्रु है, चोरों का चन्द्रमा शत्रु है ॥ ६ ॥

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः ।

ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ ७ ॥

जिन लोगों को न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है न गुण है और न धर्म है वे संसार में पृथ्वी पर भाररूप होकर मनुष्यरूप से मृग फिर रहे हैं ॥ ७ ॥

अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जायते ।
मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते ॥ ८ ॥

गंभीरता विहीन पुरुषों को शिक्षा देना सार्थक नहीं होता। मलयाचल के संग से बांस चंदन नहीं होजाता ॥८॥

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥९॥

जिसको स्वाभाविक बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या करसक्ता है। आंखों से हीन को दर्पण क्या करेगा ॥ ९ ॥

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो नहि भूतले ।
अपानं शतधा धौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत् ॥१०॥

दुर्जन को सज्जन करने के लिये पृथ्वीतल में कोई उपाय नहीं है। मल के त्याग करनेवाली इन्द्रिय सौ बार भी धोई जाय तो भी श्रेष्ठ न होगी ॥ १० ॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः ।
राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥ ११ ॥

बडों के द्वेष से मृत्यु होती है, शत्रु से विरोध करने से धनका क्षय होता है, राजा के द्वेष से नाश होता है और ब्राह्मण के द्वेष से कुल का क्षय होता है ॥ ११ ॥

वरं वने व्याघ्रगजेन्द्रसेविते ।
द्रुमालयेपत्रफलाम्बुसेवनम् ॥
तृणेषु शय्याशतजीर्णवल्कलं ।
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥१२॥

वनमें बाघ और बडे २ हाथियों से सेवित वृक्ष के नीचे पत्ता फल खाना वा जलका पीना घास पर सोना सौ टुकडे वल्कलों को पहिनना ये श्रेष्ठ हैं पर बन्धुओं के मध्य धन हीन जीना श्रेष्ठ नहीं है ॥ १२ ॥

विप्रोवृक्षस्तस्यमूलं च सन्ध्या ।
वेदः शाखाधर्मकर्माणिपत्रम् ॥
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं ।
छिन्नेमूले नैव शाखा न पत्रम् ॥१३॥

ब्राह्मण वृक्ष है उसकी जड सन्ध्याहै वेद शाखाहै औरधर्म कर्म पत्ते हैं इस कारण प्रयत्न कर के जड की रक्षा करनी चाहिये जड कटजाने पर शाखा रहेगी न पत्ते ॥ १३ ॥

माता च कमला देवी पितादेवो जनार्दनः ।
बान्धवाविष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥१४॥

जिसकी लक्ष्मी माता है और विष्णु भगवान पिता है और विष्णु के भक्त ही बान्धव हैं उसको तीनोंलोक स्वदेशहींहैं १४

एकवृक्षसमारूढा नानावर्णविहंगमाः ।
प्रभातेदिक्षुदशसु कातत्रपरिवेदना ॥ १४ ॥

नाना प्रकार के पखेरू एक वृक्ष पर बैठतेहैं प्रभात समयदश दिशा में उडजाते हैं उस में क्या शोच है ॥ १५ ॥

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम् ।
वनेसिंहोमदोन्मत्तःशशकेननिपातितः ॥ १६ ॥

जिसकी बुद्धि है उसीको बलहै निर्बुद्धिको बल कहांसे होगा देखो वन में मद से उन्मत्त सिंह सस्सेसे मारा गया ॥ १६ ॥

का चिन्तामममजीवने यदिहरिर्विश्वम्भरोगीयते ।
नोचेदर्भकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निःसरेत् ॥
इत्यालोच्यमुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवल ।
त्वत्पादाम्बुजसेवनेनसततं कालोमयानीयते।१७।

मेरे जीवन में क्या चिंता है यदि हरि विश्वका पालने वाला कहलाता है ऐसा न होतो बच्चे के जीनेके हेतु माताकेस्तनोंमें दूधकैसे बनाते इसको वार २ विचार करके हे यदुपती हेलक्ष्मी पति ! सदा केवल आपके चरण कमलकी सेवासे में समय को विताता हूं ॥ १७ ॥

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धिस्तथापिभाषान्तरलोलुपोहम् । यथासुधायाममरेषुसत्यांस्वर्गांगनानामधरासवरुचिः ॥ १८ ॥

यद्यपि संस्कृत भाषाहीसे विशेष ज्ञान है तथापि दूसरीभाषा का भी मैं लोभी हूं जैसे अमृतके रहते भी देवतों की इच्छा स्वर्ग की स्त्रियों के ओष्ट के आसव में रहती है ॥ १८ ॥

अन्नाद्दशगुणं पिष्टंपिष्टाद्दशगुणंपयः ।
पयसोऽष्टगुणंमांसं मांसाद्दशगुणंघृतम् ॥ १९ ॥

चांवल से दसगुणा पिसान में गुणहै, पिसान से दसगुणादूध में, दूधसे अठगुणा मांसमें, मांससे दशगुणा घीमें ॥ १९ ॥

शाकेनरोगावर्द्धन्ते पयसावर्द्धतेतनुः ।
घृतेन वर्द्धते वीर्यं मांसान्मांसंप्रवर्द्धते ॥ २० ॥

सागसे रोग बढ़ता है दूधसे शरीर बढता है घृतसे वीर्य बढता है और मांस सेमांस बढ़ता है ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्येदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



अथ एकादशोऽध्यायः

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणाः ॥१॥

उदारता प्रिय बोलना धीरता उचित का ज्ञान ये अभ्याससे नहीं मिलते ये चारों स्वाभाविक गुण हैं ॥ १ ॥

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत् ।
स्वयमेव लयं याति यथा राजन्यधर्मतः ।२।

जो अपनी मंडलीको छोड़ कर पर वर्गका आश्रय लेता है वह आपही लय को प्राप्त होजाता है जैसे राजअधर्म से ॥२॥

हस्ती स्थूलतनुः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रा नगाः
तेजो यस्य विराजते स बलवान्स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥३॥

हाथी का स्थूल शरीर है वहभी अंकुशके के वश रहता है तो क्या हस्ती के समान अंकुश है ? दीपक के जलने पर अंधकार आपही नष्ट होजाता है तो क्या दीपक के तुल्य तम है ? बिजली के मारे पर्वत गिरजाते हैं तो क्या बिजली पर्वत के समान है ? जिसमें तेज विराजमान रहता है वह बलवान गिना जाता है मोटे का कौन विश्वास है ॥ ३ ॥

कलौदशसहस्राणि हरिस्त्यजतिमेदिनीम् ।
तदर्द्धंजाह्नवीतोयं तदर्द्धंग्रामदेवताः ॥ ४ ॥

कलियुग में दशसहस्र वर्ष के बीतनेपर विष्णु पृथ्वी कोछोड देते हैं उसके आधे पर गंगाजी जलको, तिसके आधेके बीतने पर ग्राम देवता ग्रामको ॥ ४ ॥

गृहासक्तस्यनोविद्या नोदयामांस भोजिनः ।
द्रव्यलुब्धस्यनोसत्यं स्त्रैणस्यनपवित्रता ॥ ५ ॥

गृहमें आसक्त पुरुषों को विद्या नहीं होती, मांसके आहारी को दया नहीं होती, द्रव्यलोभी को सत्यता नहीं होती और व्यभिचारी को पवित्रता नहीं होती ॥ ५ ॥

नदुर्जनःसाधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपिशिक्ष्यमाणः।
आमूलसिक्तःपयसाघृतेन ननिम्बवृक्षोमधुरत्वमेति६

निश्चयहै कि दुर्जन अनेक प्रकारसे सिखलायाभी जायतोभी उस में साधुता नहीं आती दूध और घी जडमें सींचो परन्तु नीम का वृक्ष मधुर नहीं होसक्ता ॥ ६ ॥

अन्तर्गतमलोदुष्टस्तीर्थ स्नानशतैरपि ।
नशुद्ध्यातितथा भाण्डं सुरायादाहितञ्चयत् ॥७॥

जिसके हृदय में पाप है वही दुष्ट है वह तीर्थ में सौ बार स्नान से भी शुद्ध नहीं होता जैसे मदिराका पात्रजलापा भी जायतो भी शुद्ध नहीं होता ॥ ७ ॥

नवेत्तियोयस्यगुणप्रकर्षंसतंसदानिन्दतिनात्रचित्रम्
यथाकिरातीकरिकुम्भलब्धांमुक्तांपरित्यज्यविभर्ति-
गुजाम् ॥ ८ ॥

जो जिसके गुण की प्रकर्षता नहीं जानता वह निरन्तर उस की निन्दा करता है जैसे भिल्लनी हाथी के मस्तक के मोती को छोड़ घुंघची को पहिनती है ॥ ८

येतुसंवत्सरम्पूर्णं नित्यं मौनेन भुञ्जते ।
युगकोटिसहस्रं तैःस्वर्गलोकेमहीयते ॥ ९ ॥

जो वर्ष भर नित्य चुपचाप भोजन करता है वह सहस्रकोटि युगतक स्वर्ग लोक में पूजा जाता है ॥ ९ ॥

कामक्रोधौ तथालोभं स्वादुशृंगार कौतुके ।
अतिनिद्रातिसेवे च विद्यार्थीह्यष्टवर्जयेत् ॥ १० ॥

काम क्रोध लोभ मीठीवस्तु शृंगार खेल अति निद्रा और अति सेवा इन आठों को विद्यार्थी छोड़ देवे ॥ १० ॥

अकृष्टफलमूलानि वनवासरतिःसदा ।
कुरुतेऽहरहःश्राद्धमृषिर्विप्रः सउच्यते ॥ ११ ॥

बिना जोती भूमि से उत्पन्न फल वा मूल खाकर सदा वनवास करता हो और प्रतिदिन श्राद्ध करे ऐसा ब्राह्मण ऋषी कहलाता है ॥ ११ ॥

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्मनिरतः सदा ।
ऋतुकालाभिगामीच सविप्रोद्विजउच्यते ॥ १२ ॥

एक समय के भोजन से सन्तुष्ट रह कर पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना कराना दान देना और लेना इन छः कर्म्मोंमें सदारत हो और ऋतुकाल में स्त्री का संग करे ऐसे ब्राह्मण को द्विज कहते हैं ॥ १२ ॥

लौकिकेकर्म्मणिरतः पशूनांपरिपालकः ।
वाणिज्यकृषिकर्मायः सविप्रोवैश्यउच्यते ॥ १३ ॥

सांसारिक कर्म में रतहो और पशुओं का पालन बनियाई और खेती करने वालाहो वह विप्र वैश्य कहलाता है ॥ १३ ॥

लाक्षादितैलनीलीनां कौसुम्भमधुसर्पिषाम् ।
विक्रेतामद्यमांसानां सविप्रः शूद्रउच्यते ॥ १४ ॥

लाह आदि पदार्थ तेल नीली पीताम्बर मधु घी मद्य और मांस इनका बेचने वाला वह ब्राह्मण शूद्र कहा जाता है ॥ १४ ॥

परकार्य्यविहन्ताच दाम्भिकः स्वार्थसाधकः ।
छलीद्वेषीमृदुःक्रूरो विप्रोमार्जारउच्यते ॥ १५ ॥

दूसरे के कामका बिगाड़ने वाला दम्भी अपने अर्थका साधने वाला छली द्वेषी ऊपर मृदु और अन्तः करण क्रूर होता वह ब्राह्मण बिलाव कहा जाता है ॥ १५ ॥

वापीकूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम् ।
उच्छेदने निराशङ्कः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ १६ ॥

बावली कुंआ तलाव बाटिका देवालय इनके उच्छेदन करने में जो निडर हो वह ब्राह्मण म्लेच्छ कहलता है ॥ १६ ॥

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्शनम् ।
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥ १७ ॥

देवता का द्रव्य और गुरुका द्रव्य जो हरताहै और पर स्त्री से संग करता है और सब प्राणियों में निर्वाह कर लेताहै वह विप्र चाण्डाल कहलाता है अर्थात् (चण्डकोप) इस धातु से चाण्डाल पद साधु होता है ॥ १७ ॥

देयं भोज्यधनं धनं सुकृतिभिर्नो संचयस्तस्य वै
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता ।
अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात्संचितं
निर्वाणादिति नैजपादयुगलं घर्षन्त्यहो मक्षिकाः ॥ १८ ॥

सुकृतियों को चाहिये कि भोग योग्य धन का और द्रव्य को देवें कभी सञ्चय न करें कर्ण बलि विक्रमादित्य इन राजाओं की कीर्ति इस समय पर्यन्त वर्तमान है दान भोग से रहित बहुत दिन से संचित हमारे लोगों का मधु नष्ट होगया निश्चय है

कि मधु मक्खियां मधु के नाश होने के कारण दोनों पांवों को घिसा करती हैं ॥ १८ ॥

इति वृद्धचाणक्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

सानन्दंसदनं सुतास्तु सुधियःकांताप्रियालापिनी
इच्छापूर्तिधनंस्वयोषितिरतिः स्वाज्ञापराःसेवकाः
आतिथ्यंशिवपूजनंप्रतिदिनं मिष्टान्नपानंगृहे
साधोः संगमुपासते चसततं धन्योगृहस्थाश्रमः ॥ १

यदि आनन्दयुत घर मिलै और लडके पण्डित हों स्त्री मधुर भाषिणी हो इच्छा के अनुसार धनहो अपनी स्त्री में रति हो आज्ञापालक सेवक मिले अतिथिकी सेवा और शिवकी पूजा होती जाय प्रति दिन गृहही में मीठा अन्न और जल मिले सर्वदा साधुके संग की उपासना हो तो गृहस्थाश्रम ही धन्य है ॥ १

आर्तेषुविप्रेषुदयान्वितश्चयच्छ्रद्धयास्वल्पमुपैतिदानं
अनंतपारंसमुपैतिराजन्यद्दीयतेतन्नलभेद्द्विजेभ्यः

जो दयावान पुरुष आर्त्त ब्राह्मणों को श्रद्धा से थोडाभी दान देता है उस पुरुष का अनन्त होकर वह मिलता है जो दिया जाता है वह ब्राह्मणों से नहीं मिलता ॥ २ ॥

दाक्षिण्यंस्वजनेदयापरजने शाठ्यंसदादुर्जने
प्रीतिःसाधुजनेस्मयः खलजनेविद्वज्जनेचार्जवम् ॥
शौर्यंशत्रुजनेक्षमागुरुजने नारीजनेधूर्तता
इत्थंयेपुरुषाः कलासुकुशलास्तेष्वेवलोकस्थितिः२

अपने जन में दक्षिता दूसरे जन में दया सदा दुर्जनमें दुष्टता साधु जनमें प्रीति खल में अभिमान विद्वानों मेंसरलता शत्रु जन में शूरता बडे लोगों के विषय में क्षमा स्त्री से काम पडने पर धूर्तता इस प्रकार से लोग कला में कुशल होते हैं उन्हीं में लोक की मर्यादा रहती है ॥ २ ॥

हस्तौदानविवर्जितौश्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ ।
नेत्रेसाधुविलोकनेनरहिते पादौनतीर्थंगतौ ॥
अन्यायार्जितवित्तं पूर्णमुदरंगर्वेणतुंगंशिरो ॥
रे रेजम्बुकमुञ्चमुञ्चसहसानीचं सुनिंद्यंवपुः ॥४॥

हाथ दानरहित हैं कान वेदशास्त्र के विरोधीहैं नेत्रोंने साधुका दर्शन नहीं किया पांवों ने तीर्थ गमन नहीं किया अन्याय से आर्जित धन से उदर भरा है और गर्व से शिर ऊंचा होरहा है, रे सियार ! ऐसे नीच निंद्य शरीरको शीघ्र छोड ॥ ४ ॥

येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्तिभक्तिर्नराणां
येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्तारसज्ञा॥

येषां श्रीकृष्णलीलाललितरसकथा सादरौनैवकर्णौ
धिक्तांधिक्तांधिगेतांकथयतिसततंकीर्त्तनस्थोमृदंगः॥५

श्रीयसोदासुत के पद कमल में जिन लोगोंकी भक्तिनहीं रहती जिन लोगों की जीभ अहीरों की कन्याओं के प्रिय अर्थात् कृष्णके गुणगान में प्रीति नहीं रखती और श्रीकृष्णजी की लीलाकी ललित कथा का आदर जिनके कान नहीं करते उन लोगोंको धिक् है उन्हीं लोगोंको धिक् है ऐसा कीर्त्तनका मृदंग सदा कहता है ॥ ५ ॥

पत्रं नैव यदाकरीलविटपे दोषोवसन्तस्य किं।
नोलूकोऽप्यवलोकते यदिदिवासूर्यस्य किं दूषणं।
वर्षा नैव पतन्तिचातकमुखे मेघस्य किं दूषणं।
यत्पूर्वविधिनाललाटलिखितं तन्मार्जितुंकःक्षमः॥६

यदि करील के वृक्ष में पत्ते नहीं होते तो बसन्तका क्या अपराध। यदि उल्लूक दिन में नहीं देखता तो सूर्य्य का क्या दोष है ॥ वर्षा चातक के मुख में नहीं पडती इस में मेघकाक्या अपराध है पहिलेही ब्रह्मा ने जो कुछ ललाट में लिखदियाहै उसे मिटाने को कौन समर्थ है ॥ ६ ॥

सत्संगाद्भवति हि साधुताखलानां साधूनां नहिखल

संगताःखलत्वम् । आमोदं कुसुमभवंमृदेव धत्तेमृद्गन्धं नहिकुसुमानि धारयन्ति ॥ ७ ॥

निश्चय है कि अच्छे के संग से दुर्जनों में साधुता आजाती है परंतु साधुओं में दुष्टों की संगति से असाधुता नहीं आती फूलकी गंधको मिट्टी ले लेती है परंतु मिट्टीकी गंधको फूलक भी धारण नहीं करते ॥ ७ ॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूताहिसाधवः ।
कालेन फलतेतीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥ ८ ॥

साधुओं का दर्शनही पुण्य है इस कारण कि साधुतीर्थरूप हैं समयसे तीर्थ फल देताहै साधुओंका संग शीघ्र काम देताहै॥८

विप्रास्मिन्नगरेमहान्कथयकस्तालद्रुमाणांगणः ।
को दाता रजको ददातिवसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि ॥
को दक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षोजनः ।
कस्माज्जीवसिहेसखेविषकृमिन्यायेन जीवाम्यहम् ॥

हे विप्र ! इस नगर में कौन बडाहै ताड के पेड़ों कासमुदाय, कौन दाता है धोबी प्रातःकाल वस्त्र लेता है और रात्रि में दे देता है, चतुर कौन है दूसरे के धन और स्त्री के हरण में सब ही कुशल हैं आप कैसे जीते हो हे मित्र विष का कीड़ा विषहीमें जीता है वैसे ही मैं भी जीता हूं ॥ ९ ॥

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि । स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि स्मशानतुल्यानि गृहाणितानि ॥ १० ॥

जिन घरोंमें ब्राह्मण के पाओंके जलसे कीचड़ न भया हो और न वेद शास्त्र के शब्द की गर्जना और जो गृह स्वाहा स्वधासे रहित हो उसको स्मशान के समान समझना चाहिये ॥ १० ॥

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा । शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ॥ ११ ॥

सत्य मेरी माता है और ज्ञान पिता धर्म मेरा भाई है और दया मित्र शान्ति मेरी स्त्री है और मोक्षपुत्र यही छःमेरेबन्धु हैं ॥ ११ ॥

किसी संसारी पुरुष ने ज्ञानी को देखकर चकित हो यह पूछा कि संसार में पिता भाई मित्र स्त्री पुत्र ये जितने ही अच्छे से अच्छे हों उतनाही संसार में आनन्द होता है तुझको परम आनन्द में मग्न देखताहूं तो तुझकोभी कहीं न कहीं कोई न कोई उन में से होगा ज्ञानी समझा कि जिस दशाको देखकर यह चकित है वह दशा क्या संसारिक कुटुम्बों से हो सक्ती है इस कारण जिन में तुझे परम आनन्द होता है उन्ही को इससे कहूं कदाचित यह भी इन को स्वीकार करै ॥ ११ ॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः । नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्म्मसंग्रहः ॥ १२ ॥

शरीर अनित्य है विभव भी सदा नहीं रहता मृत्यु सदा निकट ही रहता है इस कारण धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥ १२ ॥

निमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवाः ।
पत्युत्साहयुता भार्याः अहं कृष्णरणोत्सवः ॥ १३ ॥

निमन्त्रण ब्राह्मणों का उत्सव है नवीन घास गौयों का उत्सव है पति के उत्साह से स्त्रियों का उत्साह होता है कृष्ण मुझ को रणही उत्सव है ॥ १३ ॥

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥ १४ ॥

दूसरे की स्त्रियोंको माताके समान दूसरेके द्रव्यको ढेलाके समान अपने समान सबप्राणियों को जो देखता है वही देखता है ॥ १४ ॥

धर्म्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता ।
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगंभीरता ॥
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता ।
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो राघव ॥ १५ ॥

धर्म में तत्पर मुख में मधुरता दान में उत्सुकता, मित्र के विषय में पवित्रता गुरु से नम्रता अन्तःकरण में गंभीरता आचार में पवित्रता गुण में रसिकता शास्त्रों में विशेषज्ञता रूप में सुंदरता और शिवकी भक्ति, हे राघव ये आपही में हैं ॥ १५ ॥

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः ।
सूर्यस्तीव्रकरः शशीक्षयकरः क्षारोहि वारान्निधिः ॥
कामोनष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगो ।
नैतांस्तेतुलयामिभोरघुपते कस्योपमादीयते ॥ १६ ॥

कल्पवृक्ष काठ है सुमेरु अचल है चिन्तामणि पत्थर है सूर्य की किरण अत्यन्त उष्ण है चन्द्रमा की किरण क्षीण हो जाती है समुद्र खारा है कामके शरीर नहीं है बलिदैत्य है कामधेनु सदा पशुही है इस कारण आपके साथ इनकी तुलना नहीं देसक्ते हैं रघुपति ! फिर आपको किसकी उपमादी जाय ॥ १६ ॥

विद्यामित्रं प्रवासेच भार्यामित्रं गृहेषु च ।
व्याधिस्तस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥ १७ ॥

प्रवास में विद्या हित करती है घरमें स्त्री मित्र है रोगग्रस्त पुरुष का हित औषध होता है और धर्म मरेका उपकार करता है ॥ १७ ॥

विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम् ।
अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेतकैतवम् ॥ १८ ॥

सुशीलता राजा के लड़कों से, प्रिय वचन पण्डितों से असत्य जुआरियों से और छल स्त्रियों से सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

अनालोक्यव्ययं कर्ता अनाथः कलहप्रियः ।
आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति ॥ १९ ॥

बिना विचारे व्यय करने वाला सहायक के न रहने पर भी कलह में प्रीति रखने वाला और सब जाति की स्त्रियों में भोग के लिये व्याकुल होने वाला पुरुष शीघ्रही नष्ट हो जाता है ॥१९॥

नाहारं चिन्तयेत्प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत् ।
आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सहजायते ॥ २०॥

पंडित को आहार की चिंता नहीं करनी चाहिये एक धर्म को निश्चय के हेतु से सोचना चाहिये इस हेतु कि आहार मनुष्यों को जन्म के साथही उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणे तथा ।
आहारेव्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखीभवेत् ॥२१॥

धन धान्य के व्यवहार करने में वैसेही विद्या के पढ़ने पढ़ाने में आहार और राजा की सभा में किसी के साथ विवाद करने में जो लज्जा को छोड़े रहेगा वह सुखी होगा ॥ २१ ॥

जलबिंदुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।
सहेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्यच धनस्यच ॥२२॥

क्रमक्रमसे जल के एक २ बूंद के गिरने से घड़ा भर जाता यही सब विद्या धर्म और धन का भी कारण है ॥ २२ ॥

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खलएवसः ।
सुपक्वमपि माधुर्यं नोपयातीन्द्रवारुणम् ॥२३॥

वयके परिणाम पर भी जो खल रहताहै सो खलहीबनारहताहै अत्यन्त पकी भी तितली कभी मीठी नहीं होती ॥२३॥

इति वृद्धचाणक्ये द्वादशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोदशोऽध्याय.

मुहूर्त्तमपिजीवेच्च नरः शुक्लेनकर्मणा

नकल्पमपिकष्टेन लोकद्वयविरोधिना ॥ १ ॥

उत्तम कर्म से मनुष्यों को मुहूर्तभर का जीना भी श्रेष्ठहैदोनों लोकों के विरोधी दुष्टकर्मसे कल्पभरकाभी जीनाउत्तमनहीं॥१॥

गतेशोको न कर्त्तव्यो भविष्यंनैव चिन्तयेत् ।

वर्त्तमानेनकालेन प्रवर्त्तन्ते विचक्षणाः ॥ २ ॥

गत वस्तुका शोक नहीं करना चाहिये और भावीकी चिन्तान करे कुशललोग वर्तमान कालके अनुरोध से प्रवृत्त होते हैं ॥२॥

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता ।

ज्ञातयः स्नानपानाभ्यां वाक्यदानेन पण्डिता॥३॥

निश्चय है कि देवता सत्पुरुष और पिता ये प्रकृतिसेसन्तुष्ट होतेहैं बन्धुस्नान और पान से और पण्डित प्रिय वचनसे॥३॥

आयुःकर्म्मचवित्तञ्च विद्यानिधनमेवच ।

पञ्चैतानि च सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥४॥

अयुर्दाय कर्म धन विद्या और मरण ये पांच जब जीवगर्भ में रहता है उसी समय सिरजे जाते हैं ॥ ४ ॥

अहोवतविचित्राणि चरितानिमहात्मनाम् ।
लक्ष्मी तृणायमन्यन्ते तद्भारेणनमन्तिच ॥ ५ ॥

आश्चर्य है कि महात्माओं के विचित्र चरित्र हैं लक्ष्मी को तृणसम मानतेहैं यदि मिलजातीहै तो उसके भारसे नम्रहोजातेहैं

यस्यस्नेहोभयं तस्य स्नेहोदुःखस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानिदुःखानि तानि त्यक्त्वावसत्सुखम् ॥ ६ ॥

जिसकी किसी में प्रीति रहती है उसीको भयहोता है स्नेहही दुःख का भाजनहै और स्नेह ही दुःखका कारण है इस कारण उसे छोड कर सुखी होना उचित है ॥ ६ ॥

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्न मतिस्तथा ।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥ ७ ॥

आनेवाले दुःखका पहिलेसे उपाय करनेवाला और जिसकी बुद्धि में विपत्ति आजानेपर शीघ्रही उपाय भी आजाता है ये दोनों सुख से बढ़ते हैं और जो सोचता है कि भाग्यवश से जो होनेवाला है अवश्य होगा वह विनष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

राज्ञिधर्मिणिधर्मिष्ठाः पापेपापाः समेसमाः ।
राजानमनुवर्तन्ते यथाराजातथाप्रजाः ॥ ८ ॥

दो०—नृप धरमी धरमी प्रजा, पाप पाप मत जान ।
सम तें सम भूपति जथा, परगट प्रजा पिछान ॥ ८ ॥

यदि धर्मात्मा राजाहो तो प्रजाभी धर्मिष्ट होतीहै यदि पापीहो तो पापी समहो तो सम सब प्रजा राजाके अनुसार चलती है जैसा राजा है वैसी प्रजा भी होती है ॥ ८ ॥

जीवन्तम्मृतवन्मन्ये देहिनन्धर्मवर्जितम् ।
मृतोधर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥ ९ ॥

धर्मरहित जीतेको मृतक के समान समझता हूं निश्चय है धर्म युत मरा भी पुरुष चिरंजीवीही है ॥ ९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्यजन्मनिरर्थकम् ॥ १० ॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमेंसे जिसको एक भी नहीं रहता बकरी के गलेके स्तनके समान उसका जन्म निरर्थक है ॥ १० ॥

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना ।
अशक्तास्तत्पदंगन्तुं ततोनिन्दां प्रकुर्वते ॥ ११ ॥

दुर्जन दूसरे की कीर्तिरूप दुस्सह अग्नि से जलकर उस के पदको नहीं पाते इस लिये उस की निन्दा करने लगते हैं ॥ ११ ॥

बन्धायविषयासंगोमुक्त्यैनिर्विषयम्मनः ।
मनएवमनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ १२ ॥

विषयों में आसक्त मन बंधनका हेतुहै, विषयसे रहित मुक्ति का मनुष्यों के बंधन और मोक्षका कारण मनही है ॥ १२ ॥

देहाभिमानेगलिते ज्ञानेन परमात्मनि ।
यत्रयत्रमनोयाति तत्रतत्रसमाधयः ॥ १३ ॥

परमात्मा के ज्ञान से देह के अभिमान के नाश होजाने पर जहां २ मन जाता है वहां २ समाधिही है ॥ १३ ॥

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम् ।
देवायत्तंयतः सर्वं तस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ॥ १४ ॥

मनका अभीप्सित सब सुख किसको मिलताहै क्यों कि सब दैवके वश हैं इस से संतोष पर भरोसा करना उचित है॥१४॥

यथाधेनुसहस्रेषु वत्सोगच्छतिमातरम् ।
तथायच्चकृतंकर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ १५ ॥

जैसे सहस्रों धेनुके रहते बछरा माताही के निकट जाताहैवैसे ही जो कुछ कर्म किया जाता है कर्ता को मिलता है ॥१५॥

अनवस्थितकार्यस्य नजनेनवनेसुखम् ।
जनोदहतिसंसर्गाद्वनं संगविवर्जनात् ॥ १६ ॥

जिसके कार्य की स्थिरता नहीं रहती वह न जनमें सुख पाता है न वनमें जन उसको संसर्ग से जलाता है और वन मे संग के त्याग से ॥ १६ ॥

यथाखात्वाखनित्रेण भूतलेवारिविन्दति ।
तथागुरुगतांविद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७ ॥

जैसे खनने के साधन से खनके नर पाताल के जलकोपाता है वैसे ही गुरुगत विद्या को सेवा से शिष्य पाता है ॥ १७ ॥

कर्मायत्तं फलंपुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापिसुधियश्चार्याः सुविचार्य्यैव कुर्वते ॥ १८ ॥

यद्यपि फल पुरुष के कर्म के आधीन रहता है और बुद्धिभी कर्म के अनुसारही चलती है तथापि विवेकी महात्मा लोग विचारही के काम करते हैं ॥ १८ ॥

एकाक्षरप्रदातारं योगुरुंनाभिवन्दते ।
श्वानयोनिशतंभुक्त्वाचाण्डालेष्वभिजायते ॥ १९ ॥

जो एक अक्षर भी देने वाले गुरुकी वन्दना नहींकरता वह कुत्तेकी सौ योनि को भोगकर चाण्डालों में जन्मताहै ॥ १९ ॥

युगान्तेप्रचलन्मेरुः कल्पान्तेसप्तसागराः ।
साधवः प्रतिपन्नार्थान्नचलन्तिकदाचन ॥ २० ॥

युगके अन्तमें सुमेरु चलायमान होताहै और कल्पके अन्तमेंसातों सागर परंतु साधूलोग स्वीकृत अर्थसे कभीनहीं विचलते ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥



अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पृथिव्यांत्रीणिरत्नानि अन्नमापः सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाण खण्डेश रत्नसंख्याविधीयते ॥ १॥

पृथ्वी में जल अन्न और प्रिय वचन ये तीनही रत्नहैं मूर्खों ने पाषाण के टुकडोंको रत्न में गिना है ॥ १ ॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानिदेहिनाम् ।
दारिद्र्यदुःख रोगानि बन्धनव्यसनानिच ॥ २ ॥

जीवों को अपने अपराध रूप वृक्षके दरिद्रता, रोग, दुख, बन्धन और विपत्ति ये फल होते हैं ॥ २ ॥

पुनर्वित्तम्पुनर्मित्रम्पुनर्भार्यापुनर्मही ।
एतत्सर्वंपुनर्लभ्यन्नशरीरं पुनः पुनः ॥ ३ ॥

धन, मित्र, स्त्री पृथ्वी ये सब फिर २ मिलते हैं परन्तु शरीर फिर २ नहीं मिलता॥ ३ ॥

बहूनां चैवसत्वानांसमवायोरिपुञ्जयः ।
बर्षधाराधरोमेघस्तृणैरपिनिवार्यते ॥ ४ ॥

निश्चयहै कि बहुत जनोंका समुदाय शत्रुको जीतलेताहै तृणसमूहभी वृष्टि की धारा के झरनेवाले मेघका निवारण करता है।४।

जले तैलं खलेगुह्यंपात्रेदानंमनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयंयाति विस्तारंवस्तुशक्तितः ॥५॥

जल में तेल दुर्जन में गुप्तवार्त्ता सुपात्र में दान बुद्धिमान् में शास्त्र ये थोडे भी हों तो भी वस्तुकी शक्ति से आप से आप विस्तार को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥

धर्माख्यानेश्मशानेच रोगिणां यामतिर्भवेत् ।
सासर्वदैवतिष्ठेच्चेत्कोनमुच्येतबन्धनात् ॥ ६ ॥

धर्म विषयक कथा के समय श्मशानपर और रोगियों कोजो बुद्धि उत्पन्न होती है वह यदि सदा रहती तो कौन बंधनसे मुक्त न होता ॥ ६ ॥

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवतियादृशी ।
तादृशीयदिपूर्वस्यात्कस्यनस्यान्महोदयः॥ ७ ॥

निंदित कर्म के करने के पश्चात् पछताने वाले पुरुष को जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी यदि पहिले होतीतो किसको बडी समृद्धि न होती ॥ ७ ॥

दानेतपसिशौर्येवा विज्ञानेविनयेनये ।
विस्मयोनहिकर्त्तव्यो बहुरत्नावसुन्धरा ॥ ८ ॥

दान में तपमें शूरता में विज्ञता में सुशीलतामें और नीतिमेंवि स्मय नहीं करना चाहिये इस कारण कि पृथ्वी में बहुतरत्न हैं॥८

दूरस्थोऽपिनदूरस्थो योयस्यमनसिस्थितः ।
योयस्यहृदयेनास्ति समीपस्थोपिदूरतः ॥ ९ ॥

जो जिसके हृदय में रहता है वह दूरभी होतो भी वह दूरनहीं जो जिसके मनमें नहीं वह समीप भी होतो वह दूर है॥ ९ ॥

यस्माच्चप्रियमिच्छेत तस्य ब्रूयात्सदाप्रियम् ।
व्याधोमृगवधंकर्तुं गीतं गायतिसुस्वरम् ॥ १० ॥

जिससे प्रियकी वांच्छाहो सदा उससे प्रिय बोलना उचितहै व्याध मृगके वधके निमित्त मधुर स्वरसे गीत गाताहै ॥ १० ॥

अत्यासन्नाविनाशाय दूरस्थानफलप्रदाः ।
सेव्यतांमध्यभागेन राजावह्निर्गुरु स्त्रियः ॥११॥

अत्यन्त निकट रहने पर विनाशके हेतु होतेहैं दूर रहने से फल नहीं देते इस हेतु राजा अग्नि गुरु और स्त्री इनको मध्यावस्थासे सेवना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निरापः स्त्रियोमूर्खः सर्पोराजकुलानिच ।
नित्यंयत्नेनसेव्यानि सद्यः प्राणहराणिषट् ॥१२॥

आग, जल, स्त्री, मूर्ख, सांप और राजा के कुल ये सदासावधनतासे सेवनके योग्यहैं ये छः शीघ्र प्राणके हरने वालेहैं ॥१२॥

सजीवतिगुणायस्य यस्यधर्मः सजीवति ।
[illegible]विहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम्॥ १२ ॥

जल त
भाड़े शा

[illegible]ता है जिसको गुणहै और वही जीताहै जिसको धर्म [illegible]र धर्मसे हीन पुरुषका जीना व्यर्थ है ॥ १३ ॥

यदीच्छसिवशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
पुरापञ्चदशास्येभ्योगांचरन्तींनिवारय ॥ १४ ॥

जो एकही कर्मसे जगत को वश किया चाहतेहोतो पहिले पदरहोंके मुखसे मनका निवारण करो तात्पर्य यहहै कि आंख कान, जीभ, त्वचा ये पांचो ज्ञानेन्द्रिय हैं । मुख हाथ, पांव, लिंग, गुदा ये पांच कर्म्मेन्द्रिय हैं । रूप, शब्द, रस, गंध, स्पर्श ये पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। इन पन्द्रहोंसे मनको निवारण करना उचित है ॥ १४ ॥

प्रस्तावसदृशंवाक्यं प्रभावसदृशंप्रियम् ।
आत्मशक्तिसमंकोपं योजानातिसपण्डितः ॥१५॥

प्रसंग के योग्य वाक्य प्रकृतिके सदृश प्रिय और अपनीश- क्ति के अनुसार कोपको जो जानताहै वह बुद्धिमान है ॥१५

एकएवपदार्थस्तु त्रिधाभवतिवीक्षितः ।
कुणपःकामिनीमांसंयोगिभिःकामिभिःश्वभिः॥१६॥

एकही देह रूप वस्तु तीन प्रकारकी देख पडती है योगीलोग उसे अति निन्दित मृतक रूपसे कामी पुरुष कान्ता रूप से और कुत्ते मांस रूप से देखते हैं ॥ १६ ॥

सुसिद्धमौषधंधर्मं गृहच्छिद्रंचमैथुनम् ।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्नप्रकाशयेत् ॥ १७ ॥

सिद्ध औषध धर्म अपने घरका दोष मैथुन कुअन्नका भोजन निन्दित वचन इनका प्रकाश करना बुद्धिमानोंको उचित नहीं है १७

तावन्मौनेननीयन्ते कोकिलैश्चैववासराः ।
यावत्सर्वजनानन्ददायिनीवाक्प्रवर्त्तते ॥ १८ ॥

तबलों कोकिल मौन साधनते दिन बिताती है जबलों सब्जनोंको आनन्द देनेवाली वाणी आरम्भ नहीं करती ॥ १८ ॥

धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् ।
सुगृहीतं च कर्त्तव्यमन्यथा तु न जीवति॥१९॥

धर्म, धन, धान्य, गुरुका वचन और औषध यदि ये सुगृहीत हों तो इनको भली भांति से करना चाहिये जो ऐसा नहीं करता वही नहीं जीता ॥ १९ ॥

त्यजदुर्जनसंसर्गं भजसाधुसमागमम् ।
कुरुपुण्यमहोरात्रं स्मरनित्यमनित्यतः ॥ ॥ २० ॥

खलका संग छोड साधुकी संगति को स्वीकार कर दिनरात पुण्य किया कर और ईश्वर का नित्य स्मरण कर इस कारण कि संसार अनित्य है ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

यस्य चित्तन्द्रवीभूतं कृपयासर्वजन्तुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः ॥ १ ॥

जिसका चित्त सब प्राणियों पर दया से पिघल जाताहै उसको ज्ञानसे मोक्षसेऔरजटासे विभूति के लेप से क्या । १ ।

एकमेवाक्षरंयस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ।
पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यं यद्दत्वाचानृणीभवेत् ॥२॥

जो गुरू शिष्यकोएकहीअक्षरकाउपदेशकरताहै पृथ्वी में ऐसा द्रव्य नहींहै जिसको देकर शिष्य उससे उत्तीर्णहो ॥ २ ॥

खलानांकण्टकानां च द्विविधैवप्रतिक्रिया ।
उपानहास्यभंगोवा दूरतोवाविसर्जनम् ॥ ३ ॥

खल और कांटे इनका दोही प्रकार का उपाय है जूता से मुख का तोडना वा दूरसे त्याग ॥ ३ ॥

कुचैलिनन्दन्तमलोपधारिणंबह्वाशिनंनिष्ठुरभाषिणं चासूर्योदयेचास्तमितेशयानं विमुञ्चतिश्रीर्यदिच क्रपाणिः ॥ ४ ॥

मलिन वस्त्रवाले को जो दांतोंके मल को दूर नहीं करता उसको बहुत भोजन करने वाले को कटुभाषी को सूर्य के उदय और अस्त के समय में सोनेवाले को लक्ष्मी छोड़ देती है चाहे वह विष्णु भी हो ॥ ४ ॥

त्यजन्तिमित्राणिधनैर्विहीनं दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च । तंचार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते ह्यर्थो हिलोके पुरुषस्य बन्धुः ॥ ५ ॥

मित्र, स्त्री, सेवक बन्धु ये धनहीन पुरुष को छोड देतेहैं वही पुरुष यदि धनी हो जाता है फिर उसी का आश्रय करते हैं धनही लोक में बन्धु है ॥ ५ ॥

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दसवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते एकादशेवर्षे समूलं च विनश्यति ॥ ६ ॥

अनीति से आर्जित धन दश वर्ष पर्यन्त ठहरता है ग्यारहवें वर्षके प्राप्त होने परमूल सहित नष्ट होजाता है ॥ ६ ॥

अयुक्तंस्वामिनोयुक्तं युक्तंनीचस्य दूषणम् ।
अमृतंराहवेमृत्युर्विषंशंकरभूषणम् ॥ ७ ॥

अयोग्य भी वस्तु समर्थ को योग्य होतीहै और योग्य भी दुर्जन को दूषण, अमृत ने राहुको मृत्यु दिया विष भी शंकरको भूषण हुआ ॥७॥

तद्भोजनं यद्द्विजभुक्तशेषं तत्सौहृदं यत्क्रियतेपरस्मिन् । साप्राज्ञता या नकरोतिपापं दम्भं विना यः क्रियते सधर्मः ॥ ८ ॥

वही भोजन है जो ब्राह्मण के भोजन से बचा है वही मित्रता है जो दूसरे में की जाती है वही बुद्धिमानी है जो पाप नहीं करती और जो बिना दम्भ के किया जाता है वही धर्म है ॥८॥

मणिर्लुण्ठतिपादाग्रे काचः शिरसिधार्यते ।
क्रयविक्रयवेलायां काचः काचोमणिर्मणिः ॥९॥

मणि पांव के आगे लोटती हो कांच शिर पर भी रक्खा हो परन्तु क्रय विक्रय के समय काच कांचही रहता है और मणि मणिही है ॥ ९ ॥

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्या अल्पश्चकालो बहुविघ्नता चायत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसोयथाक्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥ १० ॥

शास्त्र अनन्त है और विद्या बहुत है काल थोडा है और विघ्न बहुत हैं इस कारण जो सार है उसको ले लेना उचित है जैसे हंस जलके मध्य से दूध को ले लेता है ॥ १२ ॥

दूरागतंपथिश्रान्तं वृथा च गृहमागतम् ।
अनर्चयित्वायो भुंक्ते सवैचाण्डाल उच्यते ॥११॥

दूर से आये को पंथ से थकेको और निरर्थक गृह पर आये को बिना पूजे जो खाता है वह चाण्डाल ही गिना जाता है ॥११॥

पठन्तिचतुरोवेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः ।
आत्मानंनैवजानन्ति दर्वीपाकरसंयथा ॥ १२ ॥

चारों वेद और अनेक धर्मशास्त्र पढते हैं परन्तु आत्मा को नहीं जानते जैसे कलछी पाक के रसको ॥ १२ ॥

धन्याद्विजमयीनौका विपरीताभवार्णवे ।
तरन्त्यधोगता सर्वे उपरिस्थाः पतन्त्यधः ॥१३॥

यह ब्राह्मण रूप नाव धन्य है संसार रूप समुद्र में इनकी उलटीही रीतिहै इसके नीचे रहनेवाले तरते और ऊपरकेनीचे गिरते हैं अर्थात् ब्राह्मण से जो नम्र रहता है वह तर जाता है और जो नम्र नहीं रहता है वह नर्क में गिरता है ॥ १३ ॥

जयममृतनिधानंनायकोप्योषधीनांअमृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपिचन्द्रः । भवतिविगतरश्मिर्मण्डलं-प्राप्यभानोःपरसदननिविष्टःकोलघुत्वंनयाति।१४।

अमृत का घर, औषधियों के अधिपति, जिसका शरीर अमृत मय है और शोभायुत भी चन्द्रमा सूर्य के मण्डल में जाकर निस्तेज होजाताहै दूसरे के घरमें बैठकर कौन लघुता नहींपाता १४

अलिरयंनलिनीदलमध्यगःकमलिनीमकरन्दमदालसः। विधिवशात्परदेशमुपागतःकुटजपुष्परसंबहु मन्यते ॥ १५ ॥

यह भंवरा जब कमलिनी के पत्ते के मध्य था तब कमलिनी के फूलके रससे आलसी बना रहताथा अब दैववशसे परदेश में आकर कौरैया के फूलको बहुत समझता है ॥ १४ ॥

पीतःक्रुद्धेनतातश्चरणतलहतोवल्लभोयेनरोषादावा ल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरेधार्यते वैरिणीमे।गेहंमे छेदयन्ति प्रतिदिवससुमाकान्तपूजानिमित्तं तस्मा-त्खिन्नासदाहंद्विजकुलनिलयंनाथयुक्तंत्यजामि १६

जिसने रुष्ट होकर मेरेपिताको पीडाला औरजिसने क्रोधके मारे पांवसे मेरे कान्तको मारा जो श्रेष्ठ ब्राह्मण बैठे सदालडक पनसे लेकर मुखविवरमें मेरी वैरिणीको रखतेहैं औरप्रति दिन पार्वती के पतिकी पूजाके निमित्त मेरे गृहकोकाटतेहैं नाथइससे खेद पाकर ब्राह्मणों के घरको सदा छोडे रहती हूं ॥ १६ ॥

बन्धनानिखलुसन्तिबहूनिप्रेमरज्जुकृतबंधनमन्यत् दारुभेदनिपुणोपिषडंघ्रिर्निष्क्रियोभवतिपङ्कजकोशे

बन्धन तो बहुत हैं परन्तु प्रीति की रस्सी का बन्धन औरही है काठ के छेदने में कुशल भी भँवरा कमलके कोश में निर्व्या पार हो जाता है ॥ १७ ॥

छिन्नोपिचन्दनतरुर्नजहातिगन्धंवृद्धोऽपिवारणपति र्नजहातिलीलाम्।यन्त्रार्पितोमधुरतां नजहातिचेक्षु क्षीणोऽपिनत्यजतिशीलगुणान्कुलीनः ॥ १८ ॥

फटा हुआ चन्दन का वृक्ष गन्धको त्याग नहीं देता बूढा भी गज पति विलासको नहीं छोडता कोल्हू में पेरी भी ऊख मधुरता

नहीं छोडती दरिद्र भी कुलीन सुशीलता आदि गुणोंको त्याग नहीं करता ॥ १८ ॥

उर्व्यां कोऽपिमहीधरोलघुतरोदोर्भ्यां धृतोलीलया
तेनत्वं दिविभूतले च सततं गोवर्द्धनो गीयसे ।
त्वां त्रैलोक्यधरं वहामि कुचयोरग्रेन तद्गण्यते
किंवाकेशवभाषणेनबहुनापुण्यैर्यशोलभ्यते॥ १९॥

पृथ्वीपर किसी अत्यन्त हलके पर्वतको अनायाससे बाहुओं के ऊपर धारण किया तिससे आप स्वर्ग और पृथ्वीतलमें सर्वदा गोवर्द्धन कहलाते हैं तीनों लोकों के धरने वाले आपको केवल कुचों के अग्र भागमें धारण करतीहूं यह कुछभी नहीं गिनाजाता है केशव बहुत कहने से क्या पुण्यों से यश मिलता है ॥१९॥

इति वृद्धचाणक्ये पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथ षोडशोऽध्यायः ।

नध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटन पटुर्धर्मोऽपिनोपार्जितः ।
नारीपीनपयोधरोरु युगलं स्वप्नेऽपिनालिंगितं ।
मातुः केवलमेवयौवनवनच्छेदेकुठारावयम् ॥१॥

संसार में मुक्त होने के लिये विधिसे ईश्वर के पद का ध्यान मुझसे न हुआ स्वर्गद्वार के फाटक के तोड़ने में समर्थ धर्म का भी अर्जन न किया और स्त्री के दोनों पीनस्तन और जंघों का आलिंगन स्वप्न में भी न किया मैं माता के युवापन रूप वृक्ष के केवल काटने में कुल्हाडी हुआ ॥ १ ॥

जल्पन्तिसार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतोरतिः ॥ २ ॥

भाषण दूसरे के साथ करती हैं दूसरे को विलास से देखती हैं और हृदय में दूसरेही की चिन्ता करती हैं स्त्रियों की प्रीत एक में नहीं रहती ॥ २ ॥

योमोहान्मन्यतेमूढो रक्तेयंमयिकामिनी ।
सतस्यावशगो भूत्वा नृत्यत्क्रीडाशकुन्तवत् ॥३ ॥

जो मूर्ख अविवेक से समझता है कि यह कामिनी मेरे ऊपर प्रेम करती है वह उसके वश होकर खेल के पक्षी के समान नाचा करता है ॥ ३ ॥

कोऽर्थान्प्राप्यनगर्वितोविषयिणःकस्यापदोऽस्तंगताः
स्त्रीभिःकस्यनखण्डितंभुविमनः कोनामराजप्रियः
कःकालस्यनगोचरत्वमगमत् कोऽर्थीगतो गौरवं
कोवादुर्जनदुर्गुणेषु पतितः क्षेमेण यातः पथि ॥४॥

धन पाकर गर्वी कौन न हुआ किस विषयी की विपत्ति नष्ट हुई पृथ्वी में किसके मनको स्त्रियोंने खण्डित न किया राजाको प्रिय कौन हुआ काल के वश कौन नहीं हुआ किस याचक नें गुरुता पाई दुष्टकी दुष्टता में पड़कर संसार के पथ में कुशलता से कौन गया ॥ ४ ॥

न निर्मिताकेन न दृष्टपूर्वा नश्रूयते हेममयी कुरंगी।
तथापितृष्णारघुनन्दनस्यविनाशकालेविपरीतबुद्धिः ५

सोने की मृगी न पहिले किसी ने रची न देखी और न किसी को सुन पड़ती है तो भी रघुनन्दन को तृष्णा उस पर हुई विनाश के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है ॥ ५ ॥

गुणैरुत्तमतां यान्ति नोच्चैरासनसंस्थिताः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते॥६॥

प्राणी गुणों से उत्तमता पाते हैं ऊंचे आसनपर बैठकर नहीं कोठे के ऊपर के भाग में बैठा कौवा क्या गरुड़ होजाता है।६।

गुणाः सर्वत्रपूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः।
पूर्णेन्दुः किं तथावंद्यो निष्कलंको यथाकृशः॥७

सर्व स्थान में गुण पूजे जाते हैं बडी सम्पति नहीं पूर्णिमा का पूर्ण भी चन्द्रमा क्या वैसा वन्दित होता है जैसा बिना कलंक के द्वितीया का दुर्बल भी ॥ ७ ॥

परप्रोक्तगुणो यस्तु निर्गुणोपि गुणोभवेत् ।
इन्द्रोपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः॥८॥

जिसके गुणोंका दूसरे लोग वर्णन करते हैं वह निर्गुण भी होतो गुणवान कहा जाता है इन्द्र भी यदि अपने गुणों की आप प्रशंसा करै तो उनसे लघुता पाता है ॥ ८ ॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणायान्ति मनोज्ञताम् ।
सुतरांरत्नमाभाति चामीकरनियोजितम् ॥ ९ ॥

विवेकी को पाकर गुण सुन्दरता पाते हैं जब रत्न सोने में जड़ा जाताहै तब अत्यन्त सुन्दर देख पड़ता है ॥ ९ ॥

गुणैःसर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येकोनिराश्रयः ।
अनर्घ्यमपिमाणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥ १० ॥

गुणों से ईश्वर के सदृश भी निरालम्ब अकेला पुरुष दुःख पाता है अमोल भी माणिक्य सोना के आलम्ब की अर्थात् उस में जड जाने की अपेक्षा करता है ॥ १० ॥

अतिक्लेशेनयेह्यर्था धर्मस्यातिक्रमेणतु ।
शत्रूणां प्रणिपातेन तेह्यर्थामाभवन्तुमे ॥ ११ ॥

अत्यन्त पीड़ा से, धर्म त्याग से और बैरियों की प्रणति से जो धन होते हैं सो मुझको नहों ॥ ११ ॥

किन्तयाक्रियते लक्ष्म्या यावधूरिवकेवला ।
यातुवेश्येवसामान्या पथिकैरपिभुज्यते ॥ १२ ॥

उस सम्पति से लोग क्या कर सकते हैं जो वधू के समान असाधारण है जो वेश्याके समान सर्व साधारण हो वह पथि कों के भी भोग आसक्ती है ॥ २ ॥

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीष्वाहारकर्मसु ।
अतृप्ताः प्राणिनस्सर्वेयातायास्यन्तियान्तिच॥ १३॥

धन में जीवन में स्त्रियों में और भोजन में अतृप्त होकर सब प्राणी गये और जांयगे व जाते हैं ॥ १३ ॥

क्षीयन्तेसर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रिया ।
नक्षीयतेपात्रदानमभयंसर्वदेहिनाम् ॥ १४ ॥

सब दान, यज्ञ, होम, बलि ये सब नष्ट होजाते हैं सत्पात्र को दान और सब जीवों को अभय दान ये क्षीण नहींहोते १४

तृणंलघुतृणात्तूलं तूलादपि च याचकः ।
वायुनाकिननीतोऽसौ मामयंयाचयिष्यति ॥ १५॥

तृण सब से लघु होता है तृणसे रुई हलकी होतीहै रुई से भी याचक इसे वायु क्यों नहीं उड़ाले जाती वह समझती है कि यह मुझसे भी मांगेगा ॥ १५ ॥

वरंप्राणपरित्यागो मानभंगेनजीवनात् ।
प्राणत्यागेक्षणंदुःखं मानभंगेदिनेदिने ॥ १६॥

मान भंगपूर्वकजीनेसे प्राणका त्याग श्रेष्ठ है प्राणत्यागकेसमय क्षणभर दुःखहोता है मान के नाश होनेपर दिन दिन ॥ १६ ॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने किं दरिद्रता ॥ १७ ॥

मधुर वचनके बोलने से सब जीव सन्तुष्ट होते हैं इसकारण उसीका बोलना योग्य है वचन में दरिद्रता क्या ॥ १७ ॥

संसारकूटवृक्षस्य द्वे फले त्वमृतोपमे ।
सुभाषितं च सुस्वादु संगतिः सज्जने जने ॥ १८ ॥

संसार रूप कूट वृक्षके दोही फल हैं रसीला प्रिय वचन सज्जन के साथ संगति ॥ १८ ॥

जन्मजन्मयदभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः ।
तेनैवाभ्यासयोगेन देही चाभ्यस्यते पुनः ॥ १९ ॥

जो जन्म २ दान पढ़ना तप इनका अभ्यास कियाजाता है उस अभ्यासके योगसे देही अभ्यास फिर २ करता है ॥ १९ ॥

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम् ।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥ २० ॥

जो विद्या पुस्तकोंही पर रहती है और दूसरेके हाथोंमेंजो धन रहता है कामपड़जानेपर न वह विद्या है न वह धन है ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतंगुरुसन्निधौ।
सभामध्येनशोभन्ते जारगर्भाइवस्त्रियः ॥ १ ॥

जिन्होंने केवल पुस्तककी प्रतिसेपढ़ा गुरुकेनिकट न पढ़ा वे सभाके बीचव्यभिचारसे गर्भवाली स्त्रियोंके समान नहीं शोभते ॥

कृतेप्रतिकृतिंकुर्याद्धिंसनं प्रतिहिंसनम् ।
तत्रदोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत् ॥ २ ॥

उपकार करनेपर प्रत्युपकार करना चाहिये और मारनेपर मारना इस में अपराध नहीं होता इस कारण कि दुष्टता करने पर दुष्टता का आचरण करना उचित होता है ॥ २ ॥

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्चदूरे व्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसासाध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥

जो दूर है, जिसकी आराधना नहीं हो सक्ती और जो दूर वर्तमानहै वे तपसे सिद्धहोसके हैं इसकारणसबसेप्रबलतपहै ॥ ३ ॥

लोभश्चेदगुणेनकिंपिशुनतायद्यस्ति किम्पातकैः ।
सत्यंचेत्तपसाच किंशुचिमनोयद्यस्तितीर्थेनकिम् ॥
सौजन्यं यदि किं गुणैःसुमहिमायद्यस्ति किंमण्डनैः
सद्विद्यायदिकिंधनैरपयशोयद्यस्ति किंमृत्युना ॥ ४ ॥

यदि लोभ है तो दूसरे दोषसे क्या यदि चतुराई है तो और पापोंसे क्या यदि सत्यता हो तो तप से क्या यदि मन स्वच्छन्द है तो तीर्थसे क्या यदि सज्जनता है तो दूसरे गुणोंसे क्या यदि महिमा है तो भूषणोंसे क्या यदि अच्छी विद्या हो तो धनसे क्या और यदि अपयश है तो मृत्युसे क्या ? ॥ ४ ॥

पितारत्नाकरोयस्य लक्ष्मी यस्य सहोदरी ।
शङ्खोभिक्षाटनंकुर्यान्नादत्तमुपतिष्ठते ॥ ५ ॥

जिसका पिता रत्नोंकी खान समुद्र है लक्ष्मी जिसकी बहिन ऐसा शंख भीख मांगता है सच है बिना दिया नहीं मिलता ॥ ५ ॥

अशक्तस्तुभवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः ।
व्याधितोदेवभक्तश्चवृद्धानारीपतिव्रता ॥६॥

शक्तिहीन साधु होता है निर्धन ब्रह्मचारी रोगग्रस्त देवता का भक्त होता है और वृद्ध स्त्री पतिव्रता होती है ॥ ६ ॥

नान्नोदकसमंदानं नतिथिर्द्वादशीसमा ।
नगायत्र्याःपरोमन्त्रो नमातुर्दैवतंपरम् ॥७॥

अन्न जल के समान कोई दान नहीं है न द्वादशी के समान तिथि, गायत्रीसे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है न माता से बढ़कर कोई देवता ॥ ७ ॥

तक्षकस्यविषंदन्ते मक्षिकायाविषंशिरे ।
वृश्चिकस्यविषंपुच्छे सर्वांगेदुर्जनो विषम् ॥ ८ ॥

सांपके दांत में विष रहता है मक्खीके शिर में विष है बिच्छूकी पूंछ में विष है दुर्जन सब अंगोंमें विषहीसे भरा रहता है ॥ ८ ॥

पत्युराज्ञांविनानारी उपोष्यव्रतचारिणी ।
आयुष्यंहरतेभर्तुः सानारीनरकंव्रजेत् ॥ ९ ॥

पतिकीआज्ञा बिना उपवासव्रत करनेवाली स्त्री स्वामीकी आयुको हरतीहै और वह स्त्री आप नरकमें जाती है ॥ ९ ॥

न दानैःशुध्यते नारी नोपवासशतैरपि ।
न तीर्थसेवयातद्वद्भर्तुःपादोदकैर्यथा ॥ १० ॥

न दानोंसे, न सैकडों उपवासोंसे, न तीर्थके सेवनसेस्त्री वैसी शुद्ध होती है जैसी स्वामीके चरणोदक से ॥ १० ॥

पादशेषंपीतशेषं संध्याशेषं तथैवच ।
श्वानमूत्रसमंतोयं पीत्वाचान्द्रायणं चरेत् ॥ ११ ॥

पांव धोनेसे जो जलका शेष रहजाता है पीने से जो बच जाता है और सन्ध्या करनेपर जो अवशिष्ट जल, सो कुत्तेके मूत्रके समान है इसको पीकर चान्द्रायणका व्रत करना चाहिये ॥ ११ ॥

दानेनपाणिर्नतुकंकणेनस्नानेनशुद्धिर्नतुचन्दनेन।
मानेनतृप्तिर्नतुभोजनेनज्ञानेनमुक्तिर्नतुमण्डनेन॥१२॥

दान से हाथ शोभता है कंकण से नहीं स्नान से शरीर शुद्ध होता है चन्दन से नहीं आदर से तृप्ति होती है भोजन से नहीं ज्ञान से मुक्ति होती है छापा तिलकादि भूषणों से नहीं ॥१२॥

नापितस्य गृहेक्षौरम्पाषाणेगन्धलेपनम्।
आत्मरूपं जलेपश्यन्शक्रस्यापिश्रियंहरेत्॥१३॥

नाई के घर पर बाल बनवानेवाला पत्थर परसे लेकर चन्दन लेपन करने वाला रूपको पानी में देखने वाला इन्द्र भी हो तो उसकी भी लक्ष्मी को ये हर लेते हैं ॥ १३ ॥

सद्यः प्रज्ञाहरातुण्डी सद्यः प्रज्ञाकरीवचा।
सद्यः शक्तिहरानारी सद्यः शक्तिकरंपयः ॥१४॥

कुंदरू शीघ्रही बुद्धि हर लेती है और वच झटपटबुद्धि देती है स्त्री तुरन्तही शक्ति हर लेती है दूधशीघ्रही बलकर देताहै।१४।

परोपकरणं येषांजागर्तिहृदयेसताम्।
नश्यन्तिविपदस्तेषां सम्पदः स्युःपदेपदे ॥ १५ ॥

जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार जागरूक है उनकी विपत्ति नष्ट हो जाती है और पद२में सम्पत्ति होतीहै ॥१५॥

यदिरामायदिरमायदितनयोविनयगुणोपेतः।
तनयेतनयोत्पत्तिःसुरवरनगरेकिमाधिक्यम् ॥१६॥

यदि कान्ता है यदि लक्ष्मी भी वर्तमान है यदि पुत्र सुशीलता गुण से युक्त है और पुत्र के पुत्र की उत्पत्ति हुई हो फिर देवलोक में इससे अधिक क्याहै ? ॥ १६ ॥

आहारनिन्द्राभयमैथुनानिसमानिचैतानिनृणांपशूनाम्। ज्ञानन्नराणामधिकोविशेषो ज्ञानेनहीनाःपशुभिः समानाः ॥ १७ ॥

भोजन, निद्रा, भय, मैथुन ये मनुष्य और पशुओं में समान ही हैं मनुष्यों को केवल ज्ञान अधिक विशेष है ज्ञान से रहित नर पशु के समान है ॥ १७ ॥

दानार्थिनोमधुकरायदिकर्णतालैर्दूरीकृताकरिवरेणमदान्धबुद्ध्या। तस्यैवगण्डयुगमण्डनहानिरेषाभृंगाःपुनर्विकचपद्मवनेवसन्ति ॥ १८ ॥

यदि मदान्ध गजराज ने राजमद के अर्थी भौरों को मदान्धता से कर्ण के तालों से दूर किया तो यह उसी के दोनों गण्डस्थल की शोभा की हानि भई भौरे फिर विकसित कमल वन में बसते हैं ॥

तात्पर्य यह कि यदि किसी निर्गुण मदान्ध राजा वा धनीके निकट कोई गुणी जा पड़े उस समय मदान्धों को गुणीका आदर न करना मानो अपनी लक्ष्मी की शोभाकी हानिकरनाहै काल निरवधि है और पृथ्वी अनन्त है गुणी का आदर कहीं न कहीं किसी न किसी समय होहीगा ॥ १८ ॥

राजावेश्यायमश्चाग्निस्तस्करोबालयाचकौ।
परदुःखन्नजानन्ति अष्टमोग्रामकण्टकः

राजा, वेश्या, यम, अग्नि, चोर, बालक, याचक और आठवां ग्रामकण्टक अर्थात ग्रामनिवासियों को पीड़ा देकर अपना निर्वाह करने वाला ये दूसरे के दुःखों को नहीं जानते ॥ १९ ॥

अधःपश्यसिकिम्बालेपतितन्तवकिंभुवि।
रेरे मूर्ख नजानासिगतंतारुण्यमौक्तिकम् ॥२०॥

हे बाले नीचेको क्या देखते हो तुम्हारा पृथ्वी पर क्या गिरपड़ा है तब स्त्री ने कहा रेरे मूर्ख नहीं जानता कि मेरा तरुणता रूप मोती चलागया ॥ २० ॥

व्यालाश्रयापिविफलापिसकण्टकापिवक्रापिपंकिल भवापिदुरासदापि। गन्धेनबन्धुरसिकेतकिसर्वजन्तो रेकोगुणःखलुनिहन्तिसमस्तदोषान् ॥२१॥

इति श्रीवृद्धचाणक्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥

हे केतकी यद्यपि तू सांपों का घर है निष्फल है तुझमें कांटे भी हैं टेढ़ी है कीचड से तेरी उत्पत्ति है और तू दुःख से मिलती है भी तथापि एक गन्धगुण से सब प्राणियों को बन्धु हो रही है निश्चय है कि एक भी गुण दोषोंको नाश करदेता है ॥ २१ ॥

इति श्रीउन्नावप्रदेशान्तर्गत बरोड़ा
ग्राम निवासी
पं० आनन्दमाधव दीक्षितात्मज
पं० महाजदीन दीक्षित
कृत
वृद्ध चाणक्यदर्पणे भाषा टीकायां
सप्तदशोऽध्यायः
समाप्तः

